उद्धव-गीत

स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वती

उद्धव-गीत

प्रवचन :

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

संकलन :

सुश्री कञ्चन

प्रकाशक व पुस्तक प्राप्ति स्थान

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट

'विपुल' 28/16 बी. जी. खेरमार्ग
मालावार हिल
मुम्बई - 400 006
फोन : (022) 23682055
मो.: 09619858361

स्वामीश्री अखण्डानन्द पुस्तकालय
आनन्द कुटीर, मोतीझील
वृन्दावन - 281 121
फोन : (0565) 2913043, 2540487
मो. : 09837219460

●

प्रथम संस्करण 3000
आनन्द जयन्ती, 1996
द्वितीय संस्करण 1100
अप्रैल 2013

●

© सर्वाधिकार सुरक्षित

●

मूल्य : रु. 25/-

●

मुद्रक :
आनन्दकानन प्रेस
डी. 14/65, टेढ़ीनीम, वाराणसी - 221001
फोन : (0542) 2392337

आशीर्वाद

इस वर्ष परमपूज्य महाराजश्री के ८५वें पावन आविर्भाव दिवस— "आनन्द जयन्ती" के उपलक्ष्य पर पूज्यश्री के परमकृपापात्र ब्र० श्री गिरीश चैतन्यजी ने पूज्य चरणों में अपनी भावपूर्ण श्रद्धा-भक्ति की अभिव्यक्ति अत्यन्त विनम्रता एवं सरलतापूर्वक समर्पित करने का संकल्प किया तो इसका मूर्त रूप इस "उद्धव-गीत" नाम की लघु पुस्तिका के रूप में अनायास अवतरित हुआ।

परमपूज्य महाराजश्री जी के अमृतमय प्रवचनों के इस संग्रह के प्रकाशन हेतु सम्पूर्ण व्यय श्री ब्रह्मचारी जी ने किया है, इस प्रसंग से मैं अत्यधिक प्रसन्न हूँ एवं मैं इनको हृदय से शुभाशीर्वाद देता हूँ कि इनका जीवन दीर्घकाल तक मानव जाति की सेवा में संलग्न रहे, इनका हृदय भगवद्-भक्ति से भरपूर रहे तथा सम्यक् ज्ञान से चमकता रहे।

संकलनकर्त्री सुश्री कञ्चन, प्रुफ देखने के कार्य में सहयोगी, सम्माननीय पं० श्री द्वारिकाप्रसाद शास्त्री जी (जबलपुर) एवं ब्र० रामनरेशजी तथा मुद्रक श्रीयोगेन्द्र पाहवा को मैं हृदय से शुभाशीर्वाद देता हूँ, जो इस अमृत से परिपूर्ण "उद्धव-गीत" को बहुत ही अल्प समय में आपके समक्ष पहुंचाने में सफल हुए हैं। आशा है कि परमपूज्य महाराजश्री की यह अमृत वाणी आपके जीवन में भक्ति, विरक्ती एवं भगवत्प्रबोधकी प्रेरणा देगी।

वृन्दावन १२-७-९६ — ओंकारानन्द सरस्वती

विषय-सूची

१.	भूमिका	१
२.	सफल जन्म किसका ?	२
३.	भगवद्-प्रेम	१६
४.	भक्ति की विशेषताएँ	२८
५.	आदर्शभूता ब्रजगोपिकाएँ	४२

स्वामीश्री अखण्डानन्दजी सरस्वती

उद्धव-गीत

भूमिका

दृष्ट्वैवमादि गोपीनां कृष्णावेशात्मविक्लवम् ।
उद्धवः परमप्रीतस्ता नमस्यन्निदं जगौ ॥
(१०.४७.५७)

महाभागवत श्री उद्धवजी अपने सखा श्रीकृष्ण का संदेश लेकर ब्रज में गए । तो जब उन्होंने गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति अखण्ड, अटूट प्रेम देखा, स्नेह देखा कि वे कृष्ण का कितना सुख चाहती हैं । माने देखा कि कृष्ण के प्रति गोपियों का कितना विश्वास है, कितना विश्रम्भ है । विश्वास के बिना प्रेम नहीं होता । परस्पर विश्वास भी न हो और प्रेम हो— सो नहीं हो सकता । तो गोपियों की प्रीति में कितनी अखण्डता है, यह देखा और हृदय की कितनी तदाकारता है, द्रवता है— यह देखा और कितना विश्वास है, वह देखा ! वे कहती हैं कि आवेंगे, ज़रूर आवेंगे । उन्होंने गोपियों का राग देखा, अनुराग देखा, भाव देखा, महाभाव देखा, दिव्योन्माद देखा । श्रीकृष्ण की तन्मयता में गोपियों को क्या-क्या विकलता, क्या-क्या आवेश हो रहा है— वह सब देखा ! 'परमप्रीतः' उद्धव जी आनन्द में भर गए । बोले कि भाई, हम तो गोपियों को नमस्कार करेंगे ।

किसी ने कहा कि अरे, तुम यदुवंशी, श्रीकृष्ण के सखा, बड़े भारी विद्वान, बृहस्पति ने तुमको पढ़ाया, ब्रह्मज्ञानी, इतने बन-ठनकर ब्रज में आए और अब गोपियों के चरणों में लोटोगे तो लोग क्या कहेंगे ? बोले कि अच्छा, चलो पहले वातावरण बनाते हैं— 'ता नमस्यन्निदं जगौ' । फिर गोपियों के विषय में उन्होंने पहले गान किया । यह 'उद्धव-गीत' है ।

सफल जीवन किसका ?

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो,
गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः।
वाञ्छन्ति यद्भवभियो मुनयो वयं च,
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य ॥

(१०.४७.५८)

श्री उद्धव जी कहते हैं कि बस, दुनिया में नमस्कार करने योग्य कोई है तो गोपियां हैं। क्यों ? क्योंकि, उनका जीवन सफल है।

नमस्कार, किसको करना ? जिसका जीवन अधूरा, उसको क्या नमस्कार करना। जिसका जीवन पूरा, उसको नमस्कार करना। 'नमस्कार' का अर्थ होता है, 'झुकना'। और जिसके सामने हम झुकते हैं, वह हमारे ऊपर उतरता है। 'शिव महिम्न-स्तोत्र' में पढ़ते हैं, **'न कस्या उन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः'**— तुम्हारे चरणों में अगर हम सिर झुकाते हैं तो हमारा सिर सबसे ऊँचा हो जाता है। भगवान् के सामने सिर झुकाना और संसार में सबसे ऊँचा सिर हो जाना। तो, गोपियों के सामने सिर किसलिए झुकाना ? जो गोपियों का गुण है, जो धर्म है, जो स्वभाव है, उनकी जो प्रीति है, रीति है— वह हमारे जीवन में उतरे, इसलिए गोपियों को प्रणाम करना।

तो **'एताः परं तनुभृताः भुवि'**— इस धरती पर केवल ये अपने जीवन को सफल बनाने वाली हैं। शरीर धारण किया तो केवल गोपियों ने किया। और सब का शरीर धारण करना निरर्थक है। क्यों ? क्योंकि, निखिलात्मा गोविन्द में उनका इतना ऊँचा प्रेम था !

प्रेम अगर जीवन में आ गया तो क्या कहना ! प्रेम की महिमा, विषय की महिमा से है। श्रीधर स्वामी ने यह बात बड़े सुंदर ढंग से समझाई है। प्रेम की महिमा किससे ? तो बोले कि प्रेम, किससे ? मरने वाले से कि अमर से ? अधूरे से कि पूरे से ? इन्द्रिय के भोग्य से कि परमात्मा से ? गोपियों

के प्रेम की क्या महिमा है ? बोले कि गोपियों के प्रेम का जो विषय है, उसकी ऐसी महिमा है कि उनके प्रेम में बड़प्पन आ गया। बड़े से प्रेम करने के कारण वे बड़ी हो गयीं। और, छोटे से प्रेम करें तो ? मच्छर क्या मच्छरी से प्रेम नहीं करता ? कुत्ता क्या कुतिया से प्रेम नहीं करता ? संसार में कितने लोग महाराज, लैला-मजनूं बने फिरते हैं ! उनके प्रेम की कोई कीमत है ! ! प्रेम की कीमत तब होती है, जब वह परमेश्वर के साथ जुड़ता है। गोपियों का प्रेम, परमेश्वर के साथ जुड़ा, इसलिए उस प्रेम की महिमा है। **'वाञ्छन्ति यद्भवभियो मुनयो वयं च'**— ऐसे प्रेम को भवभियो वाञ्छन्ति, मुनयो वाञ्छन्ति वयं च वाञ्छामहे— जो संसार के मुमुक्षु हैं वे चाहते हैं कि कृष्ण से प्रेम मिले तो हम मुक्त हो जाएं। जो बड़े-बड़े मुनि मुक्त हैं, वे चाहते हैं कि कृष्ण से प्रेम हो जाए तो हम को जीवन्मुक्ति का विलक्षण सुख मिल जाए। और हम लोग जो उनके भक्त हैं, उनके प्रेमी हैं— वे भी चाहते हैं कि गोपियों का जैसा प्रेम है, ऐसा प्रेम हमें मिल जाए तो हमारा जीवन सफल हो जाए।

देखो, उद्धवजी बड़े ज्ञानी, भगवान के निकटवर्ती, यहाँ तक कि वेशभूषा भी भगवान की। जब वे गाँव की ग्वालिनों के सामने झुक गए, नमस्कार करने लगे तो यह अपेक्षा हुई कि इनके हृदय में ऐसा कौन-सा भाव था कि वे अपनी श्रेष्ठता छोड़कर, महत्ता छोड़ कर और जो जाति में ऊँची नहीं, आचार में ऊँची नहीं, ज्ञान में ऊँची नहीं— उनके सामने झुके। पुराणों में जाति की ऊँचाई को ऊँचाई मानते हैं। उस से आगे बढ़ें तो आचार की ऊँचाई को ऊँचाई मानते हैं। उससे भी आगे बढ़ें तो ज्ञान की ऊँचाई को ऊँचाई मानते हैं। रज-वीर्य की शुद्धि से जाति बनती है और कर्म की शुद्धि से आचार बनता है और अविद्यानिवृत्ति पर्यंत बुद्धि की शुद्धि से, आवरण भंग से ज्ञान बनता है। तो ये बेचारी न जाति में ऊँची, न आचार में ऊँची, न ही ज्ञान में ऊँची हैं। और, इनके सामने उद्धवजी लोट-पोट हो रहे हैं। यह किस की महिमा है ?

उद्धवजी न जात के सामने लोटते हैं, न आचार के सामने लोटते हैं, न ज्ञान के सामने लोटते हैं ? तब फिर वे किसके सामने लोटते हैं ? बोले कि

प्रेम के सामने लोटते हैं। उद्धवजी का यहाँ जो नतमस्तक होना है, अपना सिर झुकाना है, वह गोपियों के प्रेम के सामने सिर झुकाना है। यह आदर किसका ? प्रेम का। तो गोपियों के प्रति उद्धवजी के हृदय में ऊँचा-से-ऊँचा भाव हैं, उस को वे प्रकट करते हैं। क्यों प्रकट करते हैं ? इसलिए प्रकट करते हैं कि दूसरे लोग भी अपने हृदय में गोपियों के समान भाव धारण करें। यह एक श्रेष्ठ भाव है।

'एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वः'— उद्धव जी कहते हैं कि धरती पर यदि कोई सच्चा शरीरधारी है और किसी ने अपने जीवन को सफल किया है,— तो इन गोपवधुओं ने किया है, इन गोपियों ने किया है।

देखो जी, शरीर तो सब धारण करते हैं। हम लोग क्या शरीरधारी नहीं हैं ? केवल गोपियाँ ही शरीरधारी क्यों हैं ? क्यों नहीं, आप भी शरीरधारी हैं। आपको संस्कृत के एक शब्द पर ध्यान दिलाता हूँ— संस्कृत में एक शब्द है 'पाशी'। संस्कृत में वरुण को 'पाशी' बोलते हैं। 'पाश' माने फंदा। तो वरुण के पास एक ऐसा फंदा है कि वे जिसको चाहें, उसको उस में फंसा लें। जैसे शंकर जी त्रिशूली हैं, इन्द्र वज्री हैं, विष्णु चक्री हैं; वैसे वरुण पाशी हैं। तो एक अपराधी को पुलिस पकड़े लिए जा रही थी। उसकी कमर में फंदा लगा हुआ था। संस्कृत के किसी पंडित ने कहा कि यह 'पाशी' जा रहा है। क्योंकि, वह फंदा उसकी कमर में था। हां, 'पाश' तो उसके पास है; परंतु वह उसके पराधीन है। 'पाश' का उसने स्वातन्त्र्य प्रयोग नहीं किया है। बल्कि, पुलिस के पराधीन हो कर 'पाश' उसको कमर में लगाना पड़ा है। और वरुण के हाथ में 'पाश' रहता है तो वह कोई उस से बंधा हुआ नहीं है। वह तो स्वतन्त्रता से 'पाश' का प्रयोग करता है। अब देखो, शरीरी कौन है ? 'शरीरी' वह नहीं है, जो शरीर में बंधा हुआ है। जो स्वतंत्रता से अपने शरीर का ईश्वर के लिए उपयोग कर सकता है, उसका नाम 'शरीरी' है। अब बताओ कि तुम्हारा शरीर सफल कि नहीं ? अगर तुमने जान-बूझकर प्रेम से ईश्वर की सेवा में अपने शरीर को लगाया, तब तो तुम वरुण के समान 'पाशी' हो, इंद्र के समान वज्री हो। और, नहीं तो जिसकी कमर में पुलिस ने पाश बांधा है, उसके समान पराधीन, कैदी हो। पाशी एक जाति भी होती है,

जो ताड़ के पेड़ पर चढ़कर ताड़ी उतारती है। हम लोगों के गाँव में उनको अछूत मानते थे। फिर बाद में उनकी 'हरिजन' संज्ञा हो गयी।

अब देखो, शरीर सफल किसका? पैसा कमाया। पंचभूत का बना शरीर और इससे पंचभूत का बना नोट कमाया। लाख-लाख नोट कमाए। सोना कमाया, चांदी कमाई। तो शरीर सफल हो गया? पंचभूत से पंचभूत की कमाई की, जो पंचभूत के काम में आवे। पंचभूत से पंचभूत का भोग किया; बोले कि शरीर सफल हो गया। तो यह धन कमाने से शरीर सफल नहीं होता है और भोग करने से शरीर सफल नहीं होता है। बोले कि अच्छा, बढ़िया कर्म किया तो शरीर सफल है। नारायण कहो, यह तो जिनके पास चार पैसे हो जाते हैं, उनका दिमाग ज़रा दूसरे ढंग का हो जाता है। उनकी ईश्वरकृपा से बनावट ही कुछ ऐसी हो जाती है कि वे अपने सरीखा बुद्धिमान किसी दूसरे को समझते ही नहीं हैं। अच्छा, बहुत कर्म करने की मज़दूरी तुमको मिलेगी। अच्छे किस्म के तुम मजदूर हो! क्योंकि, तुमने अच्छे काम किए। अतः बहुत कर्म करने से शरीर सफल हो गया, सो बात भी नहीं है।

अच्छा जी, हमने ब्रह्म ज्ञान प्राप्त किया और मोक्ष प्राप्त किया। सो अब तो सच्चे शरीरधारी हो गए! नहीं, तुम अशरीरी हो गए। शरीरातीत हो गए। ब्रह्म हो गए। जहाँ तक साधन का संबंध है, तुम्हारा शरीर सफल हो गया। मान लो बात। लेकिन, ब्रह्मज्ञानी का शरीर भी जब तक रहता है, तब तक वह कैसे प्रयोजनीय होवे?

गंगा किनारे एक महात्मा थे। वे जब शौच जाते थे तो खुरपा लेकर जाते थे और गड्ढा खोद कर शौच हो आते थे और उसको फिर भर देते थे। अब देखो, जो लोग नाले आदि में शौच हो आते हैं तो उनका तो पानी से बह जाता है और उनका शौच तो खाद हो जाता। सो परोपकारार्थ उनका शरीर हो गया। उनका शौच भी परोपकार के लिए। मिट्टी के ऊपर होने से हवा में दुर्गन्ध फैलती और गाढ दिया तो दुर्गन्ध नहीं फैली, बल्कि मिट्टी में मिट्टी मिल गयी और खाद हो गया। जिन लोगों ने बहा दिया, दुर्गन्ध

फैलाया— वह बात दूसरी हो गयी । तो ब्रह्मज्ञानी का शरीर ब्रह्मज्ञान के अनन्तर किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नहीं रह जाता ।

अब भक्त का शरीर देखो ! ब्रह्मज्ञान के सारे साधन ब्रह्मज्ञान होने पर्यंत हैं और भक्त के सारे साधन, सारे उपकरण, समूचा शरीर, समूचा मन मृत्युपर्यंत है । वेदांत दर्शन में एक इसका अधिकरण ही है कि उपासक का शरीर जब तक रहेगा, तब तक सेवा करेगा । अरे बाबा, कोई प्राणायाम, प्रत्याहार, आसन आदि करने के लिए शरीर धारण करते हैं ! कोई माला फेरने के लिए शरीर धारण करते हैं । और गोपियों ने साक्षात् नंद नन्दनन्दन श्यामसुंदर मुरली मनोहर पीताम्बरधारी नराकृति परब्रह्म के लिए अपने शरीर का प्रयोग किया, उपयोग किया ।

सो, असल में शरीर सफल किसका हुआ ? जिसका शरीर ईश्वर के काम आया । **'एताः परं तनुभृतः'**— और सब शरीरधारी शरीर में बद्ध होकर पैदा हुए । शरीर के पिंजड़े में फँसे हुए आए और मरने के समय एक पिंजड़े में से निकल कर दूसरे पिंजड़े में घुसे । उनका शरीर तो पिंजड़ा है पिंजड़ा । वे तो बंधे होते हैं । और, गोपियों ने अपने शरीर को, अपने जीवन को, अपने यौवन को, अपने हृदय को, अपने सर्वस्व को उन्हीं कृष्ण के काम में लगाया । इसलिए, 'एताः परं तनुभृतः' । बस, शरीर होए तो ऐसा होए ।

अच्छा देखो, तत्त्वमस्यादि महावाक्य जन्य बुद्धि से ज्ञान होता है । तो बुद्धि सफल । और, मन से योगाभ्यास होता है, सो मन सफल है । इन्द्रियों के संयम से तपस्या होती है, सो इन्द्रियां सफल । लेकिन बाबा, इस शरीर से अगर ईश्वर मिल जाए तो क्या पूछना ! ! धन्य-धन्य । पकड़ ले हाथ ! सूरदास ने कहा,

हाथ छुड़ाए जात हो, निबल जानि के मोहि ।
हृदय से जब जाओगे, मरद कहोंगो तोहिं ॥

कभी अविश्वास नहीं करना । इसी मनुष्य शरीर में, इन्हीं आँखों से भगवान् का दर्शन होता है । इसी हाथ से भगवान् पकड़े जाते हैं । इन्हीं कानों

से उनकी वाणी सुनी जाती है। यह मनुष्य शरीर कोई साधारण शरीर नहीं है।

अब कहते हैं कि, **'तत्राऽपि भुवि'**— नारदादि जो हैं, वे ब्रह्मलोक में रहकर अपने शरीर को सफल करें। गोपियों ने तो धरती पर रहकर अपना शरीर सफल किया। **'गोपवध्वाः'**— एक बात है कि एक तो स्वतन्त्र कुमारी नहीं थी और एक काम-धन्धे से निवृत्त बुढ़िया नहीं थीं। यह नहीं कि निवृत्त होकर तीर्थवास कर रही हैं। सो भगवान् का भजन करें। न-न, वे वृद्धा नहीं थीं। यह बड़ी अद्भुत बात है। 'गोपवध्वाः'— उनके पति थे और वे उनकी वधू थीं। ऐसी परिस्थिति में रह कर— गोपों के रहते हुए, उनकी पत्नी होते हुए, उनका संग घर में निभाते हुए और कृष्ण-वधू हो जाना। गोप-वधू रहते हुए और कृष्ण-वधू हो जाना— यह गोपियों के जीवन की विशेषता है। साधारण लोगों के जीवन में यह बात नहीं आ सकती। **'स्वजनमार्य पथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्द पदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्'**। अपने स्वजन-संबंधी को तो गोपी ने छोड़ा ही; आर्यपथ का भी परित्याग किया।

रासलीला में एक प्रसंग आता है, कृष्ण ने गोपियों से कहा कि तुम लोग अपनें-अपने घर को लौट जाओ और अपने पतियों की सेवा करो। तो गोपियों ने कहा कि धर्मशास्त्री जी, आप हमारा एक न्याय कर दीजिए। क्या ? वे बोली कि एक पुरुष था, उसको परदेश जाना था। तो उसने अपनी पत्नी को अपना एक फोटो दे दिया कि जब तक मैं नहीं आऊँ, तब तक तुम इसके सहारे रहना। अब वह पति के जाने पर उस तस्वीर को चन्दन लगावे, माला पहनावे, बड़ी सेवा-पूजा करे। घंटों उसमें लगावे। समय कट गया। बरस-दो बरस के बाद वह पुरुष लौटकर आया। किवाड़ बंद था और उसकी पत्नी, अपने पति के चित्र के सामने बैठ कर उसकी सेवा-पूजा कर रही थी। अब उसने पुकारा कि किवाड़ी खोलो। तो अब उसका कर्त्तव्य क्या है ? वह चित्रपट की पूजा करती रहे कि जो अपना असली पति आकर दरवाजे पर किवाड़ खटखटा रहा है, उसको जाकर किवाड़ खोल कर घर में ले आवे ? नारायण कहो ! क्या न्याय है ? अरे भाई, जब तक पति घर में नहीं है तब

तक तस्वीर की पूजा ! और, जब पति साक्षात् आ गया तो तस्वीर छोड़कर असली पति की पूजा होगी। गोपियां बोलीं कि देखो कृष्ण, संसार में जितने जीव हैं, उनके असली पति श्यामसुंदर तुम्हीं हो और यह जो संसार में पुरुष नामधारी जन्तु हैं— ये उसकी तस्वीर हैं, बाहरी ढाँचा है। स्त्री को मन लगाने के लिए, उसको संयम करने के लिए, उसकी मनोवृत्ति को कामवासना से रोकने के लिए यह तस्वीर दी हुई है। कब तक ? जब तक भगवान् न मिलें। भगवत्-प्राप्ति के लिए पति होता है।

यह जितना धर्मानुष्ठान है, सब ईश्वर के लिए होता है। यज्ञ किस के लिए ? ईश्वर के लिए। धर्म पालन किस के लिए ? जब तक ईश्वर न मिले, ईश्वर का प्रेम न मिले— तब तक संसार के धर्म का पालन करना। धर्मपालन का उद्देश्य ईश्वर की प्राप्ति है। धर्म पालन का उद्देश्य धर्म नहीं है। धर्म अपने में फल नहीं है। धर्म अपने परम प्रेमास्पद परमात्मा की प्राप्ति कराकर सफल है।

तो, 'गोपवध्वाः'— जैसे पुरुष संन्यास कब ग्रहण करे ? ब्रह्मचर्य से कि गृहस्थाश्रम से कि वानप्रस्थ से ? बोले कि, **'यद हरेव विरजेत् तद हरेव प्रव्रजेत्'**— सच्चा वैराग्य होना चाहिए। बस यही शर्त है। बोले भाई कि संसार के संबन्धियों को कब तक निभावें ? जब तक भगवान् से सच्चा प्रेम न हो। यही शर्त है अगर भगवान् से सच्चा प्रेम हो गया तो संसार को छोड़ कर भगवान् से प्रेम कर सकते हैं। यह सब संसार के संबंध नकली हैं और भगवान् का संबंध असली है। इस परिच्छिन्न जीव के बीच में भी नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त परमात्मा के रूप में वही बैठा हुआ है। जब तक अपने को अपरिच्छिन्न ब्रह्म से एक न जानो, तब तक जीव के संसार में हज़ारों कर्त्तव्य हैं। और, जब उसके साथ मिल गए, उसके गले लग गए, उससे जब हमारे प्राण एक हो गए, उससे जब हमारा मन एक हो गया— तब बाबा, यह प्रेम तो पर्दा फाड़ने के लिए है, आवरण भंग करने के लिए है। यह प्रेम परमेश्वर से मिलने के लिए है। तो संसार का संबंध असली संबंध नहीं है।

आदमी मरते क्यों हैं ? संसार की चीज़े बिछुड़ती क्यों हैं ? आप कभी विचार करके देखना तो मालूम पड़ेगा। अगर कोई लड़की या कोई लड़का खिलौने के साथ इतना रच-पच जाए कि अपनी मां को भूल जाए, अपने बाप को भूल जाए, अपने पति को भूल जाए, पत्नी को भूल जाए; तो क्या खिलौना हाथ में से छीन कर अपनी ओर आकर्षित नहीं कर लेना चाहिए ? ईश्वर जब देखता है कि हमारे ये जीव संसार में रच-पच गए तो थोड़ी हेर-फेर कर देता है। यह इसलिए है कि जब संसार में दुःख का अनुभव होगा तब मनुष्य ईश्वर की ओर चलेगा, ईश्वर से प्रेम करेगा।

तो नारायण, प्रश्न यह हुआ था कि गोपियों की इतनी महिमा क्यों है ? उनकी इतनी महिमा इसलिए है कि 'गोविन्द एवं निखिलात्मनि रूढ भावाः'— गोपियों के भाव रूढ़ हो गए हैं। हमारे गांव में 'रूढ़' शब्द का प्रयोग करते हैं। जब ककड़ी बिल्कुल परिपक्व हो जाती है और फटने लगती है तो कहते हैं कि अब रूढ़ हो गयी। माने अपनी पूर्ण अवस्था को प्राप्त हो गयी। अब उसका उपयोग कर लेना चाहिए। यदि अब भी उसका उपयोग नहीं किया गया तो बेकार जाएगी। सड़ जाएगी, गल जाएगी।

तो ये गोपियां कैसी हैं ? ये प्रेम की पूर्णावस्था हैं। 'रूढ़' माने अधिरूढ़ हो गया है भाव, जिनका। श्रीकृष्ण के साथ अखण्ड संबंध जुड़ा, अब कभी नहीं टूटेगा। इस को 'प्रेम' बोलेत हैं। जन्म-जन्म के लिए विश्वास हुआ। अब न हम छोड़ेंगे और न वह छोड़ेगा। हृदय द्रवित होकर तदाकार हुआ। 'ये हमारे हैं'—ऐसी ममता की दृढ़ता हुई। हृदय, उनके रंग में रंग गया और उनका हृदय, हमारे रंग में रंगा हुआ है— यह साक्षात् अनुभव होने लगा। अब दिनभर भाव की दशा रहती है, महाभाव की दशा रहती है।

मिले ही रहत, मानो कबहुँ मिले न !
भगवत रसिक रसिक की बातें,
रसिक बिना कोऊ समुझ सके न ॥

अब, गोपी और कृष्ण, कृष्ण और गोपी दिन-रात मिले रहते हैं। भाव उनका रूढ़, परिपक्व हो गया है।

असल में, सच्चिदानंद जो वस्तु है— वह पृथक्-पृथक् नहीं है। इसलिए, समाधि में सद्भाव से ऐक्य प्राप्त होता है और प्रेम में आनन्द भाव से ऐक्य प्राप्त होता है तथा प्रकृति-पुरुष विवेक में चिद्-भाव से ऐक्य प्राप्त होता है। लेकिन,यदि आवरण भंग हो गया हो तो सद्भाव भी ब्रह्म है, चिद्-भाव भी ब्रह्म है और आनन्द भाव भी ब्रह्म है। और, यदि तत्त्वमस्यादि महावाक्य जन्य वृत्ति से आवरण-भंग न हुआ हो तो सद्भाव मालूम पड़ेगा कि समाधि है, चिद्-भाव मालूम पड़ेगा कि द्रष्टा पुरुष में अवस्थान है और आनन्दभाव मालूम पड़ेगा कि भोक्ता-भोग्य का पृथक् ईश्वर में अवस्थान है। लेकिन आवरण भंग होने पर सब अवस्था ही एक सरीखी हो जाती हैं। इसीलिए बताया कि गोपियों का भाव परिपक्व था।

प्रेम की बड़ी विचित्र-विचित्र दशा होती है। प्रेम कभी क्षीण नहीं होता। प्रेम में, हृदय में कठोरता नहीं आती। प्रेम में, एक बांकापन होने पर भी पूर्णता रहती है। प्रेम में, निर्भयता होती है। प्रेम, बुरी-से-बुरी अवस्था में भी साथ नहीं छोड़ता है। और, प्रेम में नये-नये रस की उत्पत्ति होती है। नया नया सुख, नया-नया स्वाद, नया-नया भाव क्षण-क्षण पर आता है।

तो यह गोपियों का रूढ़ प्रेम! किस के प्रति? बोले कि **'गोविन्द एव निखिलात्मनि'**— निखिलात्मा गोविन्द में! सर्वात्मा गोविन्द में!! तो एक बोलते हैं, 'सर्वान्तर्यामी' और एक बोलते हैं, 'गोविन्द'। नारायण कहो, 'गोविन्द' शब्द का अर्थ सीधा-सादा यही है कि जो गाय चराए, सो गोविन्द। तो आप गाय चराते हैं कि नहीं? गोरक्षक हैं कि नहीं? इन्द्र ने कहा था कि हम ब्रज का नाश कर देंगे और श्रीकृष्ण ने ब्रज को बचाया। तब कामधेनु और इन्द्र ने तथा ब्रजवासियों ने श्रीकृष्ण का नाम 'गोविन्द' रखा। यह वही गोविन्द है। 'गाः विन्दति, परम तात्पर्य रूपेण सर्वा गाः श्रुतिः विन्दति'— सम्पूर्ण श्रुतियों को भगवान् प्राप्त होते हैं। कैसे प्राप्त होते हैं? उसके परम तात्पर्य के रूप में प्राप्त होते हैं। 'गोविन्द' माने सम्पूर्ण श्रुतियों का परम तात्पर्य। जो अपूर्व अनपर अकार्य अकारण अदेश अकाल, प्रत्यक् चैतन्याभिन्न ब्रह्म है, वह 'गोविन्द' है और वह सब की आत्मा है। यह मुरली

मनोहर पीताम्बरधारी श्यामसुन्दर, नंदनंदन वृन्दावन विहारी, यह यमुना पुलिन पर गायों के पीछे-पीछे ग्वाल-बालों के संग ठुमुक-ठुमुक करके नृत्य की गति से पाद-विन्यास करते हुए, मंद-मंद मुस्कराते हुए—प्रेमभरी चितवन से देखते हुए, पीताम्बर फहराते हुए यह जो यमुना पुलिन पर चल रहा है—सांवरा सलोना ब्रजराज कुमार, उसका नाम है 'गोविन्द'। उसके प्रति गोपियों का प्रेम है। इधर-उधर नहीं, माया गोविंद में नहीं। इस प्रेम की प्राप्ति से ही मनुष्य का शरीर असल में सफल होता है। इसलिए, गोपियों का जीवन सफल है। क्योंकि, उन्होंने कृष्ण से प्रेम किया।

अच्छा, उद्धवजी प्रेम की इतनी महिमा भला क्यों गाते हो? उद्धवजी कहते हैं,

'वाञ्छन्ति यद्भवभियो मुनयो वयं च
किं ब्रह्म जन्मभिरनन्तकथारसस्य।'
यद् यस्मान् सर्वेऽपि तं रूढभावं वाञ्छन्ति—

संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जो ऐसे रूढ़ प्रेम को, परिपक्व प्रेम को, रसायन को, इस प्रेम के रसाल को न चाहता होए! ऐसा रसाल है कि गुठली नहीं और छिलका नहीं और बस टपाटप निगलते चले जाओ। मजा-ही मजा है। कौन चाहता है? 'यस्माद् यं रूढ भावं भवभिया वाञ्छन्ति, मुनयो वाञ्छन्ति, वयं च वाञ्छामाः'। यह एक श्रुति है, **'यं सर्वे नमस्यन्ति मुमुक्षवो ब्रह्म-वादिनश्च'**— इसको यहां अर्थतः दे दिया गया है। तो 'भवधियः'— माने जो जन्म-मरण के भय से डरते हैं, वे मुमुक्षु लोग चाहते हैं कि गोपियों सरीखा हमारा प्रेम हो जाए। भई, पति मिले तो कृष्ण!

ऐसे वर को के वरूँ, जो जनमे औ मर जाए।

ये सब दुःख देने वाले हैं। क्योंकि, ये सब छोड़ने वाले हैं, मरने वाले हैं। पर यह जो अनमिला, अनदेखा होने पर भी अपने हृदय में विराजमान अपना प्यारा-प्यारा साजन है, यह सम्पूर्ण वासनाओं को मिटाने वाला है। इससे प्रेम करो! जन्म-मृत्यु से छूट जाओगे।

मुनयः मुक्ताः— माने मुक्त लोग भी इसी का भजन करते हैं और, वयं च भक्ताः— हम भक्त-लोग भी उसी का भजन करते हैं।

बाबा, यह कृष्ण के प्रेम में ऐसा क्या रखा है ? सच पूछो, जिसके हृदय में यह प्रेम जागता है तो

पीडाभिर्नवकालकूट क्वथितेर्गर्वस्य निर्वापणो
निस्यन्देन कटु सुधामधुरिमाहङ्कार संङ्कोचतः।
प्रेमा सुन्दरि नन्दनन्दन परो जागर्ति यस्यान्तरे
ज्ञायन्ते स्फुटमस्य वक्रमधुरा तेनैव विक्रान्तयः॥

(श्रीरूपगोस्वामी)

जब प्रेम में हृदय में पीड़ा जगती है तो हलाहल विष फीका पड़ जाता है। और, जब प्रेम में संयोग की मिठास जगती है, तो अमृत की मिठास फीकी पड़ जाती है। ऐसा टेढ़ा-मेढ़ा चलता है— कभी वक्र और कभी मधुर ! प्रीति की रीति निराली है। प्रीति की तो बात क्या ? अगर इस प्रीति वाले प्यारे की चर्चा चल जाए, कोई उसकी कहानी सुनाने लगे तो क्या कहना ! कवि लोग ऐसे बोलते हैं कि

मुक्त जीवन हो गया, सारे पदारथ पा गया।

तो 'अनंत कथा रसस्य'।

अब जो अघा जाते हैं, तृप्त हो जाते हैं, सो ? बोले कि, **'रस विशेष पावा तिन्ह नाहीं।'** एक ने कहा कि आओजी, तुलसीदासजी ने रामचरित-मानस लिखा है, ज़रा उसको पढ़ें। झट बोले कि क्या रखा है ? 'एक क्षत्री एक बाम्मनः एक राम एक रावणः। उनने उनकी नार चुराई, उनने उनसे करी लड़ाई॥ तनिक बात सों बातन्नः, तुलसी लिख गए पोथन्नः।' अरे, क्या रखा है ? तो,

रामचरित जो सुनत अघाहीं,
रस विशेष जाना तिन्ह नाहीं।

स्वादु-स्वादु पदे-पदे । इसमें ऐसा रस है कि एक-एक पद में स्वाद है ।

तो क्या बोलते हैं कि 'अनन्त कथारसस्य ब्रह्मजन्मभिः किं न पुनतिं । किसी ने कहा कि हम ब्राह्मण हो गए, शुक्ल वंश में हमारा जन्म हुआ । उसके बाद यज्ञोपवीत संस्कार हुआ— 'सावित्र' हो गए, फिर यज्ञ-याग किया तो 'याज्ञिक' हो गए । अब हमारे लिए इन पुराण की कथाओं में क्या रखा है ? बस-बस अभी तुमको मज़ा नहीं आया ! अभिमान में फंस गए बाबू ! कथा का जो मज़ा है, वह तो विलक्षण ही होता है ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।
नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

(भागवत, १.२.८)

श्रीमद्भागवत में बताया कि एक मनुष्य अच्छे वंश में पैदा हुआ और उसने अपने सब धर्मों का अनुष्ठान किया । लेकिन यज्ञ की आग के सामने बैठे, शरीर को आँच लगी, नाक में घुसा धुआँ, कलेजा तक काला हो गया । काशी के एक बड़े भारी विद्वान पंडित ने लिखा है कि हमारे पिता जी की छाती पर काले-काले बाल निकले हुए थे । वे क्या थे ? बोले कि वे जो रोज़ अपने हृदय में अग्नि होत्र करते थे, उसका धुआँ बालों के रूप में निकला था । तो नारायण कहो ! धुएँ के कारण भीतर काला हुआ होगा, तब न बाहर काला निकला होगा । तो ऐसे नहीं । 'नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्'— यदि तुम्हारे हृदय में उस धर्मानुष्ठान से भगवत्कथा के प्रति प्रीति का उदय नहीं हुआ, भगवान् की कथा प्यारी नहीं लगी; तो यह सब धर्मानुष्ठान परिश्रम है । उसकी वाणी कैसी है ? बोले कि वह तो अपने घर में कुलटा पत्नी को पाल रहा है । खतरे का काम है । भगवद् गुणानुवाद से रहित जीभ को अपने मुख में रखना खतरे का काम है । पता नहीं कहां फँसावेगी ।

तो 'किं ब्रह्मजन्मभिः'— ब्राह्मण के जो शुक्ल, सावित्र और याज्ञिक तीन जन्म हैं, वे व्यर्थ हैं यदि भगवद्-कथा में रस नहीं आया ।

दूसरे ने कहा कि नहीं, इसका अर्थ यह है कि 'किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथा रसस्य'— अगर कोई ब्रह्मा ही हो जाए और भगवान् ऐसा कह दें कि जब-जब नयी सृष्टि होगी, तब तुम्हीं को ब्रह्मा बनावेंगे। 'ब्रह्मजन्मभिः' बहुवचन है। तो यदि भगवान् की कथा सुनने को मिल गयी और उसमें रस आ गया तो? बोले कि ब्रह्मा होने में क्या रखा है जी? भगवान् की कथा में जो रस है, उसमें जो मज़ा है, उसके सामने ब्रह्मा होने में क्या रखा है?

गौड़ेश्वर सम्प्रदाय के लोग कहते हैं कि 'ब्रह्मजन्मभिः' का अर्थ है, 'ब्रह्मा कारवृत्तिभिः'। 'ब्रह्मजन्म' क्या है? चित्त में ब्रह्माकार वृत्ति का उदय ही 'ब्रह्मजन्म' है। अपने ब्रह्मत्व का जन्म ही ब्रह्मजन्म है। ब्रह्मजन्म माने 'ब्रह्म' ब्राह्मण नहीं, ब्रह्मा नहीं। तो निरन्तर ब्रह्माकार वृत्ति बनी रहे और भगवान् की कथा सुनने को न मिले तो व्यर्थ है। अगर भगवान् की कथा में रस आ गया तो,

सन्ध्यावन्दन भद्रमस्तु भवते भो स्नान तुभ्यं नमः,
भो देवाः पितरश्च तर्पणविधौ नाहं क्षमः क्षम्यताम्।
यत्र क्वापि निषद्य यादवकुलोत्तंसस्य कंसद्विषः,
स्मारं स्मारमघं हरामि तदलं मन्ये किमन्येन मे॥

'सन्ध्यावंदन, तुम्हारा कल्याण हो! ओ स्नान, तुमको नमस्कार है! देवता, पितरो, तर्पण करने में हम समर्थ नहीं हैं। माफ करो! अब तो हम बैठ गए और चल गयी चर्चा! यह जो माखनचोर है और गोपियों का जार है, इसकी चर्चा चल पड़ी!

कभी देखना ध्यान देकर कि घर में परस्पर कभी किसी चोर की चर्चा चलती है तो सब लोग अपना-अपना अनुभव बताने लगेंगे कि हमने ऐसा चोर देखा, हमने ऐसा चोर देखा, ऐसी चोरी देखी। और, कभी ज़ारी की बात चल जाए, लंपटों की चर्चा चल जाए— उनकी बहू, उनकी बेटी, उनका घर ऐसा! तो देखो, कैसी बात-पर-बात निकलती है। इसीलिए, भगवान् ने सोचा कि हमारे जो प्यारे जीव हैं— ये ज़रा जार की चर्चा हो तो ज्याद

बोलते हैं, चोर की चर्चा हो तो ज्यादा बोलते हैं। सो हम भी सब बन जाते हैं। लो माखनचोरी करलें, चीर-हरण कर लें, रास-लीला कर लें ! कैसे भी बाबा, तुम्हारे कान में हमारी लीला तो पड़े ! !

तो, 'अनन्त कथासु अरसस्य'— जिस को अनन्त कथा में रस नहीं है, उस बेवकूफ़ को ब्रह्मा का जन्म मिला तो क्या और पामर का जन्म मिला तो क्या और निरन्तर समाधि में बैठा तो क्या ? जो असली रसीली चीज़ थी, वह तो उसने छोड़ ही दी। श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय में श्री सनातन गोस्वामी ने ऐसा अर्थ किया है।

मतलब यह कि जब भगवत्कथा में रस आ गया तब ब्राह्मण होने में क्या रखा है और ब्रह्मा होने में क्या रखा है ? और, ब्रह्माकार-वृत्ति में भी क्या रखा है ? आना तो रस ही चाहिए। इसीलिए बोले कि भई, यह गोपियों का दर्शन, गोपियों का श्रवण, यह गोपियों के हृदय में भगवान् का प्रेम सब से बड़ी वस्तु है।

अपने हृदय में दुःख नहीं पालना, अपने हृदय में रस लाना। भगवान् को भोग रस का लगाया जाता है, कड़वाहट का नहीं। संसार में चाहे कोई भी परिस्थिति हो, अपने हृदय को रस से सराबोर करके अपने प्यारे प्रभु को निवेदित कर दो। अपने दिल को भगवद्-रस की चासनी में सराबोर कर देना, उसको रसीली बना देना। अब वह हृदय ही भगवान् को भोग लगाने लायक हो जाता है। प्रेम सबसे बड़ी वस्तु है। उसमें क्या हंस, क्या मुनि और क्या मुमुक्षु ! और, क्या ये गांव की ग्वालिन ! ! जिन्होंने भी कृष्ण से प्रेम किया, उन्होंने अपना जीवन सार्थक कर लिया।

भगवद्-प्रेम

क्वेमाः स्त्रियो वनचरी र्व्यभिचार दुष्टाः
कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावाः ।
नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोपि साक्षा—
च्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः ॥

(१०.४७.५९)

भगवान् के प्रेम की क्या महिमा है कि वह विष को भी अमृत बना देता हैं, वह मृत्यु को भी नारायण बना देता है । अगर अपने हृदय में प्रेम आ जाए तो क्या कहना ? उद्धवजी ब्रजवासियों का प्रेम देखकर भौंचक्के हो गए । अरे, मैंने तो बहुत देखे थे, पर ये लोग तो सबसे ही विलक्षण स्थिति वाले हैं । उद्धवजी को स्वर्ग में रहने का अवसर प्राप्त हुआ था । यदुवंशियों का संबंध देवताओं के साथ प्रत्यक्ष था । शंकराचार्य भगवान् ने अपने ब्रह्मसूत्र के भाष्य में लिखा है कि आजकल के लोग यदि स्वर्ग में नहीं आ-जा सकते तो इससे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि पुराने समय में लोग स्वर्ग में नहीं आते-जाते थे । लोगों की शक्ति का नाश हो रहा है, बुद्धि का नाश हो रहा है । तो शंकराचार्य भगवान् के समय में ही स्वर्ग के साथ लोगों का सीधा सम्बन्ध टूट गया था । परंतु, यदुवंशियों के समय में स्वर्ग के साथ सीधा सम्बन्ध था । देखो, अर्जुन भी स्वर्ग में गए थे । तो, बृहस्पति के शिष्य उद्धवजी कहते हैं कि जो योग्यता इन गोपियों में है, वह योग्यता तो बृहस्पतिजी में भी नहीं थी और उनके पास जो पढ़ने-लिखने के लिए देवता लोग आते थे, उनमें भी वह योग्यता नहीं थी । सो, शरीर धारण करने का जो फल है, वह फल गोपियों को मिला; देवताओं को नहीं । 'एताः परम तनुभृताः'— परम, केवलम् ।

अच्छा जी, जीवन की सफलता किस बात पर निर्भर करती है ? बोले कि एक आदमी बड़ा धर्मात्मा है । संसार में उसके जीवन को सफल मानते हैं । हाँ, धर्मात्मा का जीवन सफल है । उसने दान किया, होम किया, यज्ञ

किया । तो धर्मात्मा का जीवन सफल है-ही है । एक ने कहा कि नहीं, तप करने वाले का जीवन सफल है । हाँ भाई, उसकी इन्द्रियाँ सफल हैं । उपासना करने वाले का मन सफल है, ज्ञान प्राप्त करने वाले की बुद्धि सफल है, समाधि लगाने वाले का चित्त सफल है, सब ठीक है । लेकिन भाई, सम्पूर्ण जीवन किसका सफल है ?

वर्णन आया है कि एक गोपी श्रीकृष्ण के विरह में व्याकुल थी और उसने भगवान् के चरणारविन्द को उठाकर अपने हृदय पर रख लिया । एक ने उनका हाथ उठा कर अपने सिर पर रख लिया, एक ने उनका ताम्बूल चर्बित ले लिया । ज़रा देखो न ! अब यह राग स्वर्ग में तो उद्धव जी ने देखा कि किसी को नहीं मिलता । इसका कारण क्या है कि जहाँ अभिमान आ जाता है, वहाँ मनुष्य सेवा-सुख से वंचित हो जाता है । तो देवताओं को भोग बहुत अधिक प्राप्त है । कहते हैं कि हमारे सरीखा नंदनवन कहीं नहीं है, हमारे सरीखी उर्वशी, रंभा आदि अप्सराएँ भी तो कहीं नहीं हैं; हमारे सरीखा सुन्दर शरीर किसी के पास नहीं है । सो भोगाधिक्य के कारण देवता परमार्थ से वंचित हैं । और, बलाधिक्य के कारण दैत्य वंचित हैं । दैत्यों में बल की अधिकता है । अपनी शक्ति के मद में वे चूर हैं । मनुष्य ? मनुष्य तो लोभ के मद में चूर है । कामाधिक्य से देवता गया, क्रोधाधिक्य से दैत्य गया और लोभाधिक्य के कारण मनुष्य ईश्वर से वंचित हो गया । यह बेचारा इकट्ठा ही करने में लग गया । यह जानता है कि हमारा लड़का भी कमाएगा, हमारा भाई भी कमाएगा और ये अपने-अपने समय में अच्छे व्यापारी होंगे । परंतु फिर भी स्वयं ये महापुरुष उनके लिए इकट्ठा करने में जीवन व्यतीत कर देते हैं । यह नहीं कि अपने बुढ़ापे के लिए तो बहुत थोड़ा काफी होता है । अच्छा, लेकिन लोभ ऐसा है कि जिनके बेटा नहीं, वे भी तो इकट्ठा करते हैं ! सो लोभ की अधिकता में मनुष्य संसार में फँस गया । और, इन्हीं लोगों में किसी को धर्म का मद आया, किसी को तपस्या का मद आया । कोई अपने ज्ञान में ही मग्न है ! सम्पूर्ण जीवन अगर किसी का भगवान् में लगा तो गोपियों का लगा ।

कहते हैं कि गोपियाँ शौच, स्नान भी इसीलिए करती थीं कि शरीर, टँच रहेगा माने चुस्त रहेगा तो इससे कृष्ण की सेवा अच्छी होगी ।

निजाङ्गमपि या गोप्यो ममेति समुपासते।
ताभ्यः परं न मे किञ्चित् निगूढ प्रेम भाजनम् ॥

भगवान् कहते हैं कि हमारे प्रेम की पात्र तो गोपियाँ हैं ! जो मेरे लिए नहाती हैं, तेल लगाती हैं मेरे लिए, खाती हैं मेरे लिए, पीती हैं मेरे लिए ! श्रीकृष्ण की सेवा के लिए गोपियों का जीवन है ।

दो ही पक्ष हैं— या तो तत्-पदार्थ के लिए जीवन हो और या फिर त्वं-पदार्थ के लिए जीवन हो । माने अपने लिए होवे तो समाधि लगावे और उसके लिए होवे तो प्रेम करे । और, न उसके लिए न अपने लिए ! काहे के लिए ? बोले कि लुगाई के लिए, मुटियार के लिए । संसार में लोग काहे के लिए जिन्दा रहते हैं । कोई स्त्री के लिए, कोई पुरुष के लिए, कोई पुत्र के लिए, कोई मित्र के लिए ! अरे, ये संसार के संबंध भाई, मार कर छोड़ेंगे । ये जब तक तख्त पर लटियावेंगे नहीं, तब तक छोड़ेंगे नहीं ।

तो जीवन सफल करना हो तो भगवान् से प्रेम करो ! और, गोपियों ने भगवान् से प्रेम किया । सहज प्रेम, स्वाभाविक प्रेम । कैसे भी प्रेम हो ! उन्हें सुख तो पहुँचावें ।

यशोदा मैय्या ने उद्धवजी से पूछा था कि जब हमारा कन्हैया सवेरे उठता है तो कोई उस को रोटी पर माखन रखकर खाने को देता है कि नहीं देता है ? गोपियों ने पूछा कि क्यों उद्धव जी, जैसे श्यामसुन्दर यहाँ बाँसुरी बजाते थे तो हम उसके स्वर पर नाचती थीं; वैसे क्या कभी मथुरा में भी बाँसुरी बजती है और उसके स्वर पर कोई नाचने वाला वहाँ कोई है क्या ? बिना नृत्य के उसको वंशी बजाने में कैसे आनन्द आता होगा ! !

अरे बाबा, गोपी का तो जीवन ही कृष्ण के लिए है ।

संसार से छूटने के लिए लोग चाहते हैं कि श्रीकृष्ण से प्रेम हो । मुक्त

लोग चाहते हैं कि हम कृष्ण-प्रेम में मग्न रहें। उद्धवजी कहते हैं कि हमारे सरीखे दास भी यही चाहते हैं। हम तो पहले समझते थे कि मथुरा में हम कृष्ण के साथ-साथ रहते हैं, सो सखा होना अच्छा है। अब वृन्दावन में आकर हमने समझा कि सखी होना अच्छा है। हम भी चाहते हैं कि गोपियों का जैसा प्रेम है, वैसा प्रेम हमारे हृदय में आवे !

आप जानते हैं कि शांत-रस में एक प्रेम होता है। श्रीकृष्ण, त्रिभंग-भाव से खड़े हैं और हम उनका दर्शन कर रहे हैं। देखना दूसरी बात है। और एक प्रेम है कि हम उनकी सेवा कर रहे हैं। नहीं-नहीं, उनके साथ खेल रहे हैं। तो सेवा करना दास्य हो गया और खेलना, सख्य हो गया। नहीं, हम उनको खिला रहे हैं। तो वात्सल्य हो गया। और नहीं, हम तो उनके साथ मधुर-मधुर बात कर रहे हैं, हँस रहे हैं। यह मधुर-भाव हो गया। तो रसिकों ने यह विचार किया है कि शांत-भाव में न दास्य हैं, न सख्य है, न वात्सल्य है और न मधुर है। दास्य-भाव में शांत है और दास्य है। सख्य-भाव में शांत है, दास्य है और सख्य है और वात्सल्य-भाव में, शांत, दास्य, सख्य और वात्सल्य— चारों तो हैं। परंतु, मधुर नहीं है। यह जो गोपियों का प्रेम है— मीठा, मीठा, मीठा ! यह जो मधुर संबंध है— इसमें देखो शांत भी है, दास्य भी है। पत्नी सेवा भी करती है। सख्य भी है और वात्सल्य भी है माने खेलती भी है और दुलार भी करती है। और, उसका अपना जो मधुर भाव है, सोतो है-ही-है। तो शांत, दास्य, सख्य वात्सल्य में मधुर-रस का अन्तर्भाव नहीं होता है। परंतु, मधुर-रस में सबका अन्तर्भाव हो जाता है। इसलिए सर्वोत्तम रस कौन-सा है ? सर्वोत्तम रस है, 'शृंगार-रस'। अब यह भी ऐसा विलक्षण है कि संसार के जो लोग है, वे तो केवल काम भोग की ही बात जानते हैं। संसारी लोगों के सामने शृंगार-रस की बात कही भी नहीं जाती।

चैतन्य महाप्रभु के साथ रामानन्द राय का एक सम्वाद है। महाप्रभु ने रामान्दराय से पूछा कि सबसे बड़ा आनन्द कौन-सा है, रस कौन-सा है ? बोले कि भगवान् के दर्शन। उसके आगे हैं, उनकी सेवा करना। महाप्रभु

बोले कि नहीं, और आगे बताओ। बोले कि उनके साथ खेलना बड़ा है। "और आगे की बात ?" उनको लाड़ करना, दुलारना, खिलाना, पिलाना है। "नहीं-नहीं, और आगे की बात बोलो ?" रामान्द राय बोले कि उनके साथ मधुर-भाव होवे। गोपी सरीखा प्रेम होवे। उनके साथ जैसे द्वारका की पटरानियाँ प्रेम करती हैं, वैसा प्रेम होवे। बोले कि नहीं और आगे की बात कहो। बोले कि जैसा राधा रानी का है, वैसा होवे। बोले कि राधा और कृष्ण निरन्तर मिले ही रहते हैं। और, जब उन्होंने राधा-कृष्ण के प्रेम का वर्णन प्रारम्भ किया तो महाप्रभु ने उनके मुँह पर हाथ रख दिया कि बस-बस, अब आगे नहीं कहो। यह इसकी पराकाष्ठा है।

देखो भाई, बात सच्ची और ईमानदारी की है ! तुमको संसार में दुःख होता है कि नहीं ? अगर तुमको दुःख न होता हो तो डॉक्टर तुम्हारे घर न आते। अगर रोग न होता हो तो डॉक्टरों की दुकान न चलती। यह तो संसार में रोग होता है, इसीलिए वैद्य, डॉक्टर की ज़रूरत पड़ती है। तो, तुम्हारे मन में दुःख होता है कि नहीं ? अगर तुम्हारे मन में दुःख होता है तो न उसमें योग की ज़रूरत है, न ज्ञान की ज़रूरत है, न यज्ञ-याग की ज़रूरत है। तो मंद-मंद मुस्कराते हुए मुरली मनोहर पीताम्बरधारी श्याम-सुंदर का स्मरण करके-कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण बोलो और उसी समय तुम्हारा दुःख कट न जाए तो हमसे जवाब-तलब करना ! मुस्कारते हुए श्री कृष्ण का स्मरण हो और दुःख होवे— यह बात कभी संभव नहीं है। सुख की मूर्ति का नाम श्रीकृष्ण है। परमानन्द, सद्धन, चिद्धन आनंद धन। उसका नाम है, भगवान्। अब यह है कि यदि तुम जान बूझकर ही दुःख के आशिक हो गए हो ! किसी-किसी का इष्ट भी बड़ा विलक्षण होता है। तो कोई दुःख के ही आशिक हो जाते हैं। तो उसकी तो कोई बात नहीं। तुम दुःख से ही मुहब्बत करो ! दिनभर में सौ-पचास बार उस से मिल लिया करो ! तुम से कोई क्या कहेगा ? लेकिन यदि दुःख मिटाना चाहते हो बाबू, तो भगवान् से प्रेम करो।

जिसको श्रीकृष्ण-कथा का रस आ गया, मज़ा आ गया— उसके लिए ब्राह्मण-जन्म, ब्रह्मा-का जन्म, ब्रह्माकार-वृत्ति किसी कीमत में नहीं। और,

जिसको भगवान् की कथा में मज़ा नहीं आया, उसके दुर्भाग्य का क्या कहना ? जिसने कथा के अमृत-समुद्र में स्नान कर लिया, उसके सारे दुःख मिट गए। देखो, बाब ाजी लोग कथा का सहारा लेते हैं, उन को धन की, भोग की कभी तकलीफ नहीं देती है।

आज एक व्यक्ति से कई दिनों के बाद भेंट हुई। उसने कहा कि स्वामी जी, हम यह तो नहीं जानते कि ये लोक-परलोक, भगवान् और वैकुण्ठ आदि क्या होते हैं ! लेकिन जब कभी-कभी दुःख होता है, उस समय जब कथा की बात याद आती है तो हमारा दुःख तुरंत भाग जाता है। बस, उसी का सहारा रहता है। कथा में सुनी हुई बात जब याद आती है तो घर में जलती हुई जो आग है, वह बुझ जाती है। घर की आग बुझाने के लिए भी तो कुछ चाहिए न ! लोगों के घर में रोग है, मृत्यु है। तो सब से बड़ी वस्तु है, भगवान् की भक्ति। अभिमान नहीं करना। अभिमान में भक्ति नहीं होती।

उद्धवजी कहते हैं, 'आश्चर्य ! आश्चर्य ! ! कहाँ यह गोपी और कहाँ भगवान् का प्रेम।

'क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचार दुष्टाः
कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढ भावाः।'

कहाँ यह गाँव की गँवार ग्वालिन, स्त्रियः-स्त्री, वनचरी माने वन में भटकने वाली, 'व्यभिचार दुष्टः'—सदाचार से वंचित ! और, कहाँ यह श्रीकृष्ण के प्रति अपनी आत्मा से भी अधिक, अपने से भी ज्यादा प्रेम ! ! 'रूढ भावः' ! माने आधार के लिए योग्यता की अपेक्षा नहीं है। भक्ति की दृष्टि से बहुत गंभीर बात इस श्लोक में कही जा रही है। मैं समझता हूँ कि दशम-स्कन्ध के किसी भी श्लोक पर सम्भवतः इतनी लम्बी टीका श्रीवल्लभाचार्य ज़ी महाराज ने नहीं लिखी है, जितनी कि इस श्लोक पर लिखी है।

तो कहते हैं कि प्रेम करने वाले के लिए प्रेम तो उत्तम से होना चाहिए; पर प्रेम करने वाला उत्तम है कि निकृष्ट है— यह विचार नहीं है। प्रेम करने का अधिकार सब को है। ज्ञान करने का अधिकार सब को नहीं है। प्रेम

ऐसा द्रव्य है कि जिस पर पात्र का प्रभाव नहीं पड़ता है। जैसे दही को पीतल के बर्तन में रख देंगे तो खराब हो जाएगा। तो दही पर पीतल के बर्तन का असर पड़ गया। अब ज्ञान को अशुद्ध अंतः करण में रख दो तो मुक्ति भले ही हो जाए; लेकिन उस ज्ञानी का जो जीवन है, वह कलंकित ही रह जाएगा। मैं यह बात ज्यादा-से-ज्यादा रियायत देकर कह रहा हूँ कि अगर अशुद्ध अंतः करण में ज्ञान रख दिया जाए तो यह तो संभव है कि मुक्ति हो जाए; लेकिन जब तक ज्ञानी जी महाराज रहेंगे, तब तक वे मलिन ही रहेंगे। ज्ञान-सम्प्रदाय को लांछन ही लगेगा। लेकिन प्रेम एक ऐसी चीज़ है, जिस पर पात्र का प्रभाव नहीं पड़ता कि करने वाला कौन है! उस पर प्रभाव इस बात का पड़ता है कि वह प्रेम किससे किया गया। विषय का प्रभाव पड़ता है प्रेम पर और पात्र का प्रभाव पड़ता है योग पर, ज्ञान पर, धर्म पर। अगर अनधिकारी ने धर्मानुष्ठान किया तो विपरीत फल होता है। तो अनधिकारी के करने से धर्म बिगड़ जाए, योगाभ्यास अनधिकारी के करने से रोग का हेतु बन जाए।

देखा-देखी करे योग,
छीजे काया बढ़े रोग।

और, ज्ञान अनधिकारी पात्र में आकर दृष्ट-दुःख का विनाशक नहीं बने— यह संभव है। परंतु, प्रेम चाहे जिसके अंतः करण में आवेगा, यह प्रेम का लक्षण है कि उसको रस से तर कर देगा। प्रेम मधु है, प्रेम अमृत है। वह जिसके अंतः करण में आवेगा, उस पात्र का विचार न करके कि यह धुला है कि नहीं, मंजा है कि नहीं, किस धातु का बना है! केवल प्रेम होना चाहिए। प्रेम का आधार बनने के लिए अधिकार की ज़रूरत नहीं है। परंतु, प्रश्न यह है कि प्रेम का विषय कौन है? अगर प्रेम का विषय पवित्र है— कृष्ण से प्रेम किया गया, भगवान् से प्रेम किया गया, नारायण से प्रेम किया गया तो चाहे प्रेमी कोई भी हो, उसका मंगल-ही-मंगल है।

श्रीधर स्वामी ने टीका में लिखा कि '**न जातिराचारो ज्ञानं वा कारणं किंतु केवलं भजनमेव**— प्रेम करने वाला किस जाति का आदमी है, उसके

कैसे आचरण हैं, उसका ज्ञान कितना है— इसका विचार नहीं किया जाता। ये ग्वालिनें जाति से हीन हैं, आचार से हीन हैं और ज्ञान से हीन हैं। इनमें किसी प्रकार की पात्रता नहीं है। तब फिर यह योग्यता उनमें कैसे आयी कि उद्धव जी उनको नमस्कार करें? बोले कि, '**कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढ भावः**' इसका नाम 'रूढभाव' है। श्रीकृष्ण के प्रति उनका सहज-प्रेम है, औपाधिक नहीं है। यह नहीं समझना कि कृष्ण की जाति की जांच करके तब गोपियों ने उनसे प्रेम किया था। कि उन का रंग रूप देखा था! नहीं। ये तो कृष्ण हैं कृष्ण!!!' प्रेम विलक्षण है। क्योंकि, रूढ है। और, जिससे प्रेम किया गया, वह भी विलक्षण है। क्योंकि वह साक्षात् परब्रह्म परमात्मा है। प्रेम करने वाला कैसा? वह भी विलक्षण है।

हमारे वैष्णव टीकाकारों के मुख से निकला कि भाई, ये उद्धव जी ने क्या बात कही— '**क्वेमाः स्त्रियो वनचरीः व्यभिचार दुष्टाः**'— ऐसा शब्द ही क्यों उद्धव जी के मुँह से निकला? नारायण, नारायण, नारायण। आप यह समझो कि भगवान् के भजन के अधिकारी कौन हैं? क्या जवान भजन करे और बूढ़ा भजन न करे? क्या सधवा भजन करे और विधवा भजन न करे? क्या अमीर भजन करे, गरीब भजन न करे? क्या उच्च जाति वाला भजन करे, नीच जाति वाला भजन न करे? क्या ब्रह्मचारी जी भजन करें, व्यभिचारी भजन न करे? बल्कि धर्म से भजन करके तो अनेक प्रकार के विघ्न, बाधा भी प्राप्त होती हैं और जो विघ्न, बाधा से पहले ही ग्रस्त हो चुका है, यदि वह भजन करे तो वह तो और विघ्न, बाधा को प्राप्त हो जाएगा। अतः जो पतित है, उसके उठने का कौन-सा साधन है?

अब देखो, संस्कृत भाषा कैसी नुकीली होती है, ज़रा उसका नमूना दिखाते है— **क्वेमाः, इमाः क्व**— ये गोपियाँ कहाँ हैं? श्रीकृष्ण की प्रेमिका कितनी ऊँचीं! और, **स्त्रियाः क्व**— मथुरा की वे स्त्रियाँ, जिनमें हम रहते हैं— वे क्या हैं? **इमाः अवनचरीः स्त्रियां वनचरीः**— ये श्रीकृष्ण के द्वारा सुरक्षित हैं और वहां, 'व्यभिचार दुष्टाः' कहाँ ये स्त्री होकर 'अवनचरी'! 'अ' माने भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण उनके वन में, वृन्दावन में विचरण करने

वाली। और, दूसरा अर्थ है 'अवनचरी'— माने और सब असुरक्षित हैं, लेकिन ये श्रीकृष्ण के द्वारा सुरक्षित हैं। और सब संसार में व्यभिचार से दूषित है और ये भगवान् का भजन करके भगवान् के द्वारा सुरक्षित हैं।

जिसका हाथ भगवान् ने पकड़ लिया, अब कौन ऐसा है कि उसकी ओर आँख उठाकर देखे! श्रीकृष्ण, जो सब के चित्त को आकृष्ट करने वाले हैं। एक ब्रह्म, एक परमात्मा और एक कृष्ण। देखो, जिस ढंग से हम लोग ब्रह्म का विचार करते हैं— तो पहले ब्रह्म और उसके बाद ईश्वर, दो नंबर पर है और तीन नंबर पर यह संसार है। ये क्या है? बोले कि ब्रह्म के अज्ञान से माया का विशेषण लग गया, तब माया अथवा अविद्या की उपाधि से ईश्वर, जीव बन गए और उसके बाद माया, अविद्या के कार्य से यह दुःखमय संसार बन गया। तो जब अज्ञान है तो ब्रह्म ईश्वर और जगत्— तीन चीज़ हो गयी और जब अज्ञान मिट गया तो ब्रह्म तो ब्रह्म ही रहा और अज्ञान की स्थिति में जिसका नाम 'ईश्वर' था, उसको भगवान बोलते हैं और जिसका नाम 'संसार' था, उसका नाम 'वृन्दावन' हो गया। तो अज्ञान रहते ब्रह्म ईश्वर और प्रपंच तथा अज्ञान मिटने में ब्रह्म भगवान् और वृन्दावन। वृन्दावन में ये वृक्ष, ये लता, ये फूल, ये स्त्री, ये पुरुष— सब श्रीकृष्ण की प्रेममयी लीला।

प्रश्न इतना ही है कि अज्ञान मिटा कि नहीं? अज्ञान मिट गया। निर्गुण ब्रह्म है, सगुण ईश्वर है और साकार भगवान् कृष्ण हैं। तो निर्गुण में निराकार और साकार नहीं है और निराकार में निर्गुण भी है और साकार में निर्गुण निराकार-दोनों है। परंतु, अज्ञान मिट जाना चाहिए। अज्ञान मिटने के बाद जो कुछ है, सो सब-निराकार भी ब्रह्ममय, साकार भी ब्रह्ममय; समाधि भी ब्रह्ममय और विक्षेप भी ब्रह्ममय। तो निराकार ईश्वर समाधिमय है और साकार ईश्वर विक्षेपमय है। इसीलिए तो नाचता है। नाचने का अर्थ क्या है? नाचने का अर्थ है, विक्षेपमय होना। तो ब्रह्मज्ञान के पूर्व ब्रह्म, समाधि और विक्षेप तीनों में—विक्षेप संसार है, समाधि, विक्षेप का अभाव है और ब्रह्म, ब्रह्म है और समाधि निराकार ईश्वर है और श्रीकृष्ण साकार विक्षेपात्मक ईश्वर हैं। जैसे ब्रह्म में माया की गाढ़ता से ईश्वर और उससे भी अतिशय भाव की गाढ़ता से प्रपंच और भाव की शिथिलता से निराकारता और इन दोनों के राहित्य से ब्रह्म है। नारायण कहो! ये ऐसी लीला है! इसमें कोई

आपत्ति करे तो पूछो कि प्रपंच भासता हुआ भी ब्रह्म है कि नहीं है ? तो प्रपंच भी भासता है और प्रपंचाभाव भी भासता है। तो जो प्रपंचाभाव भास रहा है, वह अज्ञानकाल का निराकार ईश्वर है और जो प्रपंच भास रहा है, वह अज्ञानकाल का प्रपंच है। लेकिन ज्ञानकाल में यही तो फ़रक हुआ कि जो अज्ञानकाल का प्रपंच था, वह भगवान् का लीलाधाम हो गया और, जो समाधि थी, वह निराकार ईश्वर होकर रह गया। तो भक्त लोग इसको ऐसे कहते हैं कि परमात्मा के तीन रूप हैं— ब्रह्म, परमात्मा और कृष्ण। वे कृष्ण को भगवान् बोलते हैं। तो निर्गुण निराकार जो है, वह ब्रह्म है और सगुण निराकार का नाम परमात्मा है, ईश्वर है तथा सगुण साकार परमात्मा का नाम भगवान् श्रीकृष्ण है। इसी से,

'यत्र-यत्र मनो याति, तत्र-तत्र समाधयः'।

ज्ञानी ने साकार को देखा तो ब्रह्म। विक्षेप भी ब्रह्म है। और, निराकार को देखा तो ब्रह्म। समाधि भी ब्रह्म है।

बोले भाई कि यह ज्ञान वाली शर्त जो है, यह बड़ी मुश्किल है ! देखो जी, सगुण-विद्या की विशेषता ही यह है। सगुणवाद ही नहीं हो सकता, यदि ज्ञान की विशेषता रह जाए। निर्गुण ब्रह्म विद्या ज्ञान प्रधान है और सगुण ब्रह्म-विद्या, भाव प्रधान है। तो ज्ञान हो जाए तो कहना ही क्या ! पर, इसकी तो चर्चा छोड़ देते हैं। ज्ञान नहीं हुआ है, तब की बात करते हैं।

हम नहीं पहचानते थे कि भांग का स्वाद कैसा होता है ? एक बार मैं मिर्जापुर गया तो वहां लोगों ने ठंडाई पिलाई। अब उसमें भांग मिली थी। पीने पर कलेजे में गुदगुदी हो रही थी। नशा चढ़ रहा था। उस समय भी हम अपने कपड़े को पहचानते नहीं थे। सो, एक आदमी ने हमारा दुशाला निकाल लिया और बोला कि यह हमारा है। हमने कहा कि तुम्हारा होगा भाई, ले जाओ। यह बात मैंने क्यों सुनाई ? हमने अनजान में भांग पी ली। लेकिन भांग ने नशा किया कि नहीं किया ? तो उसने ज्ञान की अपेक्षा नहीं रखी।

वृन्दावन में होली के दिनों में मंदिर वाले प्रसाद देते हैं। हरी-हरी बर्फी होती है। खाने पर थोड़ी देर में नशा होने लगता है। उसमें भांग मिली रहती

है। एक बात आपको सुनाऊँ कि भारतवर्ष में एक आश्रम है। तो वहां प्रसाद बंटता था, जो वहीं बनवाया जाता था। वहां जब कोई जाता तो देखकर आदमी को पहचानते। किसी को आधा पेड़ा, किसी को एक पेड़ा, किसी को दो पेड़ा दिया जाता। अब उसमें भांग मिला रहता। आदमी जब वह प्रसाद खाता तो उसे भीतर-ही-भीतर फुरफुरी होने लगती। वह कहता कि भाई, आश्रम में जाने पर बड़ा आनन्द आया। यह तो दिव्यधाम है। यहां आने से कैसा मज़ा आता है! तो भांग पिलाकर लोगों को भगत बना लेते थे। साधु भी कितनी तरह के होते हैं— लटाधारी, जटाधारी, पटाधारी। थोड़े दिनों के बाद जब लोगों को मालूम पड़ जाता था कि प्रसाद में भांग मिली रहती है तो सारा भेद खुल जाता था। जो बेचारे कभी-कभी आते थे, उनको तो लगता था कि आश्रम में आने पर भक्ति बढ़ जाती है और जो वहां रहते थे, वे तो जानते थे कि भक्ति कहाँ से आती है! वह तो भांग में से भक्ति निकलती है तो नारायण, भक्ति में एक शर्त है कि जैसे कोई अनजान में भी जहर पी ले तो मर जाता है और अनजान में भी अमृत पी ले तो अमर हो जाता है। यह जो भगवान् हैं श्रीकृष्ण, सगुण ईश्वर। सगुण कहते ही उसको हैं, जिसमें वस्तु गुण हों। जैसे अनजान में भी आग छू जाए तो हाथ जल जाता है और अनजान में भी बर्फ़ छू जाए तो आदमी ठंडा हो जाता है। तो वह वस्तु में गुण होता है। इसी प्रकार यह जो सगुण भगवान् हैं, इनमें वस्तु गुण है। निर्गुण भगवान् में वस्तु-शक्ति नहीं है। निर्गुण भगवान् में तुम तत्त्वज्ञान के द्वारा आवरण भंग करो, तुम वही हो— यह ठीक है। लेकिन, यह महाराज अपनी शक्ति से मंगल करने वाला, कल्याण करने वाला है।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः।

यह सगुण-विद्या है। चाहे तुम उसको पहचानो और चाहे मत पहचानो। भजन करो।

नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोपि साक्षात्।

तुमने पहचाना कि नहीं पहचाना? बोले कि नहीं पहचाना। 'तब फिर कर क्या रहे हो? बोले कि सेवा कर रहे हैं।' किसकी सेवा कर रहे हो?' 'भगवान् की सेवा कर रहे हैं। बस, ठीक है।' जैसे अनजान में सेवन किया हुआ अमृत, अमर बना देता है; वैसे ही अनजान में सेवन किया हुआ यह

जो भगवान्-है—भगवान्, परम कल्याण का दाता होता है। यह मनुष्य का परम कल्याण कर देता है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि अज्ञानी भी भगवान् से प्रेम करे तो उसका कल्याण होगा। इसमें ज्ञान की शर्त नहीं है।

धावन्नमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह।

(भागवत, ११.२.३५)

आँख बंद करके भगवान् की भक्ति के रास्ते पर दौड़ो! न तो स्खलन है और न तो पतन है। परम कल्याण है। ये गोपियाँ पहचानती हैं कि कृष्ण कौन हैं? उनसे प्रेम करती हैं। कृष्ण का उपयोग करती हैं। माने उनको अपने जीवन में लाती हैं। कान में कुंडल बनाकर रखती हैं, आँख में अंजन बना कर रखती हैं, हृदय पर मणि बनाकर रखती हैं। ये भुजपाश में बांधती हैं। ये श्रीकृष्ण का अपने जीवन में उपयोग करती हैं। माना कि ये कृष्ण को नहीं पहचानती हैं। पर, कृष्ण तो वही हैं न। और, वे जब उनके शरीर से छू जाएँगे, उनके दिल से छू जाएँगे, उनके दिमाग से छू जाएँगे तो उनकी शक्ति कहाँ जाएगी? इसलिए, भाई ज्ञान की शर्त नहीं है। जानो, चाहे मत जानो। भगवान् का भजन करो। देखो, तुम्हारा मंगल होता है कि नहीं होता। तुम्हारा कल्याण होता है कि नहीं होता!!

एक बार मैं किसी कारण से रो रहा था। रोते-रोते ऐसी याद आई कि मैं तो रो रहा हूँ और भगवान् हमको रोते देखेंगे तो क्या करेंगे? कहीं आकर सामने खड़े होंगे तो मुस्कराकर अंगूठा दिखाकर बोलेंगे— ली-ली, ली-ली।' क्यों रो रहे हो? क्या मैं तुम से छूट गया? अब बताओ कि उस समय हमारा दुःख रहा कि भाग गया? यह तो संसार में दुःख होता ही तब है, जब मनुष्य भगवान् को भुला देता है। भगवान् की याद करने वाले को जिस समय याद है, उस समय दुःख नहीं है और जिस समय दुःख है, उस समय भगवान् की याद नहीं है। इस बात को समझ लो। जब दुःख आवे तो समझना कि वह आया है कि क्यों भाई, भूल गए भगवान् को! अब उनको बुलाओ, नहीं तो मैं आता हूँ। भगवान् ने दुःख बनाया ही इसीलिए है कि जब-जब तुम मुझको भूलोगे, तब-तब तुम्हारे दरवाज़े पर दुःख आवेगा।

भक्ति की विशेषताएं

नन्वीश्वरोऽनु भजतोऽविदुषोमि साक्षा—
च्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवो पयुक्तः ।

(१०.४७.५९)

वाच्यार्थ के रूप में सगुण-ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं और लक्ष्यार्थ की दृष्टि से आत्मा और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन करते हैं । कई साधक इस बात को भूल जाते हैं । क्योंकि, जब त्वंपदार्थ का वर्णन सुनते हैं कि आत्मा, द्रष्टा है, असंग है तो जीव पने वाली बात हल्की पड़ जाती है और जब निर्गुण निराकार, निर्विकार, निर्धर्मक, देश-काल-वस्तु से अपरिच्छिन्न, सजातीय-विजातीय-स्वगत भेद शून्य ब्रह्म का निरुपण सुनते हैं, तब उन्हें वाच्यार्थ रूप ईश्वर हल्का मालूम पड़ने लगता है । उसका फल यह होता है कि मनुष्य के जीवन के लिए जो उपयोगी साधन हैं और जो उपकारी प्रक्रिया है, उसकी ओर से दृष्टि हट जाती है ।

ज़रा एक बात ध्यान से देखो ! आप भोजन करते हैं । तो भोजन सगुण होता है कि निर्गुण ? अगर भोजन निर्गुण होता है तो कोई भी चीज़ खा कर आपको ज़िन्दा रहना चाहिए ! नहीं, ज़िन्दा रहने के लिए ख़ास-ख़ास सगुण वस्तु का सेवन करना पड़ता है । यह गेहूँ है, यह चावल है, यह कद्दू है— ये सगुण पदार्थ हैं । और, जब शरीर में रोग होता है, तब ? औषधियों में सगुणता है कि नहीं ? औषधियों में शक्ति है कि नहीं ? सर्प गंधा में दूसरी शक्ति है और मुक्ति पिष्टा में दूसरी शक्ति है । भांग में नशा लाने की शक्ति है कि नहीं ? भांग सगुण है कि निर्गुण है ? एक बात आपसे पूछते हैं कि संसार में जितने द्रव्य होते हैं माने जितने पदार्थ होते हैं व सगुण होते हैं कि नहीं ? सगुण होते हैं और उनको खाने का असर पड़ता है । और, जितने अक्षर होते हैं, वे भी सगुण होते हैं । उनको बोलने का असर पड़ता है । 'ओऽम' बोलने का एक प्रभाव शरीर पर पड़ता है और 'कृष्ण' बोलने का एक प्रभाव पड़ता है; 'राम' बोलने का एक प्रभाव पड़ता है । जैसे, पृथक-पृथक अन्नों, औषधियों

में पृथक्-पृथक् शक्ति होती है; वैसे पृथक्-पृथक् मन्त्रों और नामों में भी पृथक्-पृथक् शक्ति होती है। शक्तिहीन कोई वस्तु नहीं होती— न नाम, न रूप और न कर्म। तो जब तक निर्गुण ब्रह्म से एकता की प्राप्ति नहीं हो जाएगी और जब तब आत्मातिरिक्त सम्पूर्ण प्रपंच बाधित नहीं हो जाएगा, तब तक संसार में कोई भी वस्तु शक्तिहीन है, यह कहना सत्य से मुँह मोड़ना है।

तो यदि तुमने अपने जीवन में कोई परिवर्तन करना है— आँख में परिवर्तन करना है तो दवा या ऑपरेशन चाहिए। कान में परिवर्तन करना है, हाथ में परिवर्तन करना है, दिल-दिमाग में परिवर्तन करना है तो उसके लिए शक्तिवाली, गुणवाली दवा का सेवन करना पड़ता है। यदि शक्तिवाली और गुणवाली दवा का सेवन नहीं करोगे तो तुम्हारे जीवन में जो रोग है, वह दूर नहीं होगा। थोड़ी देर के लिए भले ही मुकर जाओ कि नहीं-नहीं, इससे हमारा कोई रिश्ता नहीं है। तो नारायण यह जो सगुण ईश्वर है, यह आप के लिए एक शक्ति है। भगवान् के श्रीचरणों में जो अनुरक्ति है, वह भक्ति है— वह जीवन के लिए बहुत बड़ी शक्ति है। भक्ति ही शक्ति है। 'मेरी भक्ति गुरु की शक्ति। फुरो मंत्र ईश्वरोवाचा ॥' ऐसी-ऐसी शक्ति देखी है। सिद्ध पुरुष का संकल्प, मंत्र की स्वाभाविक शक्ति और हमारी श्रद्धा— ये तीनों मिल कर जीवन के सब कषाय को मिटा देते हैं।

तो निर्गुण-निर्गुण करके धूल मत खाने लगना! गेहूँ खाना भला!! गेहूँ भी निर्गुण और धूल भी निर्गुण- इस चक्कर में मत फंसना। गेहूँ ही खाना, धूल मत खाना।

तो भक्ति योग में एक अपूर्वता है। इस श्लोक को ध्यान से पढ़ोगे तो मालूम पड़ेगा कि भक्ति का निरुपण करने के लिए यह अपूर्व है।

नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोपि साक्षा—
च्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः।

प्रश्न है कि सब काम ज्ञानी से ही होगा? संसार में अज्ञानी का भला

करने का कोई उपाय है कि नहीं ? सब साधन, सब भजन, सब भलाई ज्ञानियों की ही होगी ? हमारी सरकार कह दे कि जो पढ़े-लिखे शिक्षित लोग हैं, उनकी उन्नति के तो हम जिम्मेवार हैं और जो अनगढ़ हैं उनकी उन्नति के हम जिम्मेवार नहीं हैं ? नहीं, ऐसी सरकार किसी काम की नहीं । बच्चा होगा, तो क्या पेट में से पढ़ा-लिखा आवेगा ? वह जब तक अशिक्षित रहेगा, तब तक उसकी सम्भाल माँ करेगी कि नहीं ? बाप करेगा कि नहीं ? माँ-बाप के विश्वास से उसकी उन्नति होगी कि नहीं होगी ? तो ईश्वर के राज्य में भी जैसे शिक्षित पुरुषों की उन्नति होती है, वैसे-ही जो अशिक्षित हैं, बालक हैं— उनकी उन्नति की व्यवस्था भी ईश्वर के राज्य में है ।

क्या व्यवस्था है ? कुछ जन कहते हैं कि हम सबको पढ़ा-लिखा बना देंगे, सब समझदार बन जाएँगे और फिर धरती पर स्वर्ग उतर आवेगा । हम बड़े अनुभव से और विश्वसृष्टि का मूल देखकर, उस अभिन्ननिमित्तोपादान कारण का साक्षात् दर्शन करके यह बात कह रहे हैं कि सृष्टि में केवल शिक्षा से काम नहीं चल सकता । श्रद्धा का होना आवश्यक है ।

यदि सृष्टि में से श्रद्धा मिटा दी गयी तो सृष्टि में दुःख की वृद्धि ही होगी; दुःख की निवृत्ति नहीं हो सकती । इसी से जो अध्यात्म-पथ के पथिक हैं, उनको यह बात समझनी चाहिए कि कहाँ जाने से हमारी श्रद्धा बढ़ती है, क्या पढ़ने से हमारी श्रद्धा बढ़ती है, क्या जप करने से हमारी श्रद्धा बढ़ती है, क्या सत्संग करने से हमारी श्रद्धा बढ़ती है । जो हमारे हृदय में बनी बनाई श्रद्धा को बिगाड़ता है, वह हमारी साधना का शत्रु है । वह हमारी उन्नति में सहायक नहीं है, विकास में सहायक नहीं है । वह हमारे जीवन को बिगाड़ने वाला है । इसलिए हमारे जीवन में श्रद्धा बढ़नी चाहिए ।

अब भक्ति की विशेषता सुनो ! भक्ति की विशेषता यह है कि जब प्रेम के साथ ईश्वर का स्मरण, चिन्तन किया जाता है तब यह अपने विषय के गुण को लाकर अपने आधार में स्थापित करती है । माने भक्ति कहाँ होगी ? दिल में न ! तो भक्ति की यह विशेषता है कि वह गंदे घर में भी जाती है । यह क्या विशेषता है ? देखो, कोई भी जनता का सेवक होगा और सेवा करना

चाहेगा, वह कोढ़ी की सेवा करेगा कि नहीं करेगा ? वह गंदी नाली को साफ करेगा कि नहीं करेगा ? यदि सेवक कहे कि हम गंदी नाली के पास नहीं जाएँगे और कोढ़ी के पास नहीं जाएँगे, तो वह सेवक कैसा ? तो यह भक्ति जो है, यह सेवा है। यह बड़े आदमियों की सेवा नहीं है। जिनको सेवा की ज़रूरत नहीं है, उनकी सेवा नहीं है। यह तो उन लोगों की सेवा है, जिनके अन्तः करण में कोई राग है, कोई रोग है, कोई द्वेष है, कोई शोक है। जहां रोष है, दोष है— वहां भक्ति प्रवेश करती है, घुसती है और जा कर वहाँ श्रीकृष्ण का चिंतन, राम का चिंतन, शिव का चिंतन, सगुण ईश्वर का चिंतन, वह सौन्दर्य माधुर्य वारानिधि का चिंतन— ऐसा हृदय में ले आती है कि हृदय की एक-एक गंदगी घुल जाए। जो लोग भक्ति को अल्प-साधन मानते हैं, वे या तो शुद्धान्तःकरण तत्त्वज्ञानी हैं। भई, उनको ज़रूरत नहीं है अंतः करण शुद्ध करने की। और, या तो वे संसारी हैं, अपने अंतः करण में राग-द्वेष बनाए रखना चाहते हैं और ब्रह्म भी हो जाना चाहते हैं। इसलिए, जीवन में भक्ति की ख़ास ज़रूरत है।

अब गोपी की बात लो। गोपी को हम दो दृष्टि से देखते हैं— एक तो श्रीकृष्ण के प्रेम में डूबी हुई, बड़े-बड़े भक्त लोग उनके चरणों की धूलि लेकर अपने सिर पर लगाते हैं। और दूसरे, हम गोपी को इस दृष्टि से देखते हैं कि साधन की दृष्टि से संसार में जो कुछ चाहिए, वह उनके पास नहीं है। न तो जाति ऊँची है, न तो उनका सम्प्रदाय ऊँचा है, न तो ज्ञान ऊँचा है, न तो आचरण ही ऊँचा है। उनके अन्दर, ऊँची अगर कोई चीज़ है तो श्रीकृष्ण से प्रेम !

कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः।

जो लोग संस्कृत जानते हैं, उनके लिए यह बात कहता हूँ कि, आत्मनि रूढभावः, एक पद है। जैसे 'सरसिज' शब्द होता है, सप्तमी का लोप नहीं होता और लोप होने पर 'सरोज' शब्द होता है। वैसे यह 'आत्मनि रूढभावः' एक पद है और उसके बाद फिर समास है— परमः आत्मनि रूढभावः, परमात्मनिरूढ भावः— तो उनके हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति परम प्रेम है। 'परम प्रेम' है माने अपना ख्याल छोड़कर श्रीकृष्ण से प्रेम है।

एक प्रेमी ऐसे होते हैं कि संसार का भी ख्याल करते हैं और ईश्वर से प्रेम भी करते हैं और एक प्रेमी ऐसे होते हैं, जो संसार का ख्याल तो नहीं करते, पर अपना ख्याल करते हैं और ईश्वर से प्रेम करते हैं। पर गोपियाँ, न संसार का ख्याल करती हैं, न अपना ख्याल करती हैं। वे तो भगवान् से प्रेम करती हैं। प्रेम ही उनका स्वरूप है, प्रेम ही उनकी वृत्ति है। यह प्रेम सर्व अवस्था में रहता है— जाग्रत् में, स्वप्न में, सुषुप्ति में। यह नहीं कि सोते समय प्रेम कट जाता है, स्वप्न में प्रेम कट जाता है, जाग्रत् में प्रेम कट जाता है। यह संयोग में भी रहता है और वियोग में भी रहता है। निकट रहो तब भी यह रहता है और दूर रहो, तब भी रहेगा। रोज़-रोज़ मिलो, तब भी रहेगा और हज़ार बरस बाद मिलो, तब भी रहेगा। प्रेम, वह चीज़ है, जिस के बीच में जन्म और मृत्यु व्यवधान डालने में समर्थ नहीं हैं। मौत होनेसे भी प्रेम नहीं कटता और दूसरा जन्म हो जाने से भी प्रेम नहीं कटता। प्रेम वह फंदा है, जो प्रियतम से एक किए बिना कभी मिटता ही नहीं। यह कपट का मल नहीं रहने देता।

प्रेम में मल क्या? प्रेम में मलिनता केवल कपट है। प्रेमी तो अपने प्रियतम के शरीर का मैल अपनी जीभ से चाटता है। तो प्रेम में मलिनता नहीं होती। और, प्रेम में दूसरे का जो ख्याल है, यह विक्षेप है और प्रेम में जो ख्याल है, यह विक्षेप है और प्रेम में जो अपना ख्याल है, यह आवरण है। और प्रेम, स्वयं इतना शक्तिशाली है कि इन तीनों चीज़ों को भस्म कर देता है। जब प्रेम बढ़ेगा तो न तो उसमें कपट रहेगा, न दूसरे का ख्याल रहेगा और न तो अपना ख्याल रहेगा। प्रेमी तो प्रियतम में डूब जाएगा। यह अन्नमय कोष, प्राणमय कोश, मनोमय कोश— प्रेमी और प्रियतम के बीच में नहीं रहता है। यह इनको मिटा कर छोड़ता है, अगर प्रेम होवे सच्चा!! इसके साथ भी एक शर्त है कि वह प्रेम ईश्वर से होवे। क्योंकि विषय की महिमा ही प्रेम की महिमा है। आधार की महिमा, प्रेम की महिमा नहीं है। सोने के बर्तन में प्रेम रखा है माने प्रेम करने वाला बड़ा आदमी है, इसलिए

प्रेम बढ़िया नहीं होता । प्रेम बढ़िया आदमी से किया गया है, इस लिए बढ़िया होता है । तो प्रेम भगवान् से किया गया है, इसलिए बढ़िया है । बल्कि प्रेम के बारे में यह बात देखने में आती है कि देखो, राम से तुलसी ने प्रेम किया, कृष्ण से मीरा, सूर ने प्रेम किया । अब भी हिंदुओं में बहुत ऐसे हैं, जो राम-कृष्ण से प्रेम करते हैं, शिव से प्रेम करते हैं । लेकिन जब हम सुनते हैं कि एक मुसलमान राम या कृष्ण से प्रेम करता है, जब हम सुनते हैं कि एक चाण्डाल भगवान् से प्रेम करता है तो मन में आता है कि यह चाण्डाल होकर भगवान् से प्रेम करता है, चलो दर्शन कर आवें ! यह मुसलमान होकर भगवान् का नाम लेता है, चलो-चलो दर्शन कर आवें । माने छोटे आधार में जब विशाल का प्रेम प्रकट होता है तब लोगों के मन में छोटे आधार के दर्शन की भी लालसा उत्पन्न होती है । तो वह छोटे में बड़प्पन कहाँ से आया ? बड़े के प्रति जो प्रीति है, उसी ने छोटे में बड़प्पन ला दिया ।

अब श्लोक की व्याख्या देखो—

नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोपि साक्षा—
च्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः ।

कोई बिल्कुल अज्ञानी हो, जानता न हो कि ईश्वर क्या है ? 'सत्यं ज्ञानमनन्तम् ब्रह्म'— यह लक्षण परमात्मा का है, परमात्मा की पहचान है— यह उसको बिल्कुल मालूम न हो । क्योंकि, आप यह भी समझ लेना कि जो लोग रोज़ उपनिषद् का पाठ करते हैं और 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' जिनको कण्ठस्थ है और जिन्होंने इसका हिन्दी अर्थ, पढ़ लिया है— वह भी 'सत्य' पद का अर्थ, 'ज्ञान' पद का अर्थ, 'अनंत' पद का अर्थ वस्तुतः जानते हैं कि नहीं, इसमें शंका ही रहती है । सैंकड़ों में कोई जानते हैं ।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चित् यतति सिद्धये ।

'सत्यं' का अर्थ जो त्रिकालाबाध्यत्वं है, 'ज्ञानं' का अर्थ जो सर्वावभासकत्वे सति स्वयं प्रकाशकत्वं है और 'अनंत' का अर्थ जो

देश-काल-वस्तु से अपरिच्छिन्नता है, सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद शून्यता है— इसको बहुत थोड़े लोग जानते हैं; बहुत थोड़े लोग समझते हैं। वे भी अज्ञानी हैं। 'अहं ब्रह्मास्मि' बोलने से कोई ज्ञानी नहीं हो जाता है।

तो भक्ति की विशेषता यह है कि अज्ञानी-से-अज्ञानी और ईश्वर के बारे में उसकी जितनी जानकारी है, उसी के अनुसार, (और कुछ उसमें जोड़ना नहीं है) उस को ईश्वर की प्राप्ति हो जाती है।

एक कथा आती है कि एक मुसलमान एकांत में बैठकर सोचता था कि जब हमको खुदा मिलेगा तो हम उसके सिर में तेल लगावेंगे, उसकी दाढ़ी में कंघी करेंगे, उसका पांव दबावेंगे। हजरत मूसा आए। बोले कि मुसलमान, तू क्या कर रहा है? बोला कि खुदा के बारे में सोच रहा हूँ कि उसकी दाढ़ी में कंघी करेंगे, उसके सिर में तेल लगावेंगे। वे बोले कि अरे मुसलमान, अरे तुम तो कुफ्र कर रहे हो! काफ़िर हो गए हो। क्यों? खुदा तो निराकार होता है, उसके कहीं सिर होता है? उसके कहीं दाढ़ी होती है? उसके कहीं पाँव होता है? तब उसने कहा कि हम तो नहीं जानते हैं कि खुदा कैसा होता है! हमको तो यही अच्छा लगता है, यही करेंगे। तो हजरत मूसा ने उसको कोड़ा मारा। फिर उसने कहा कि मैं तो नहीं जानता। सो आप बताइए कि ईश्वर का चिंतन कैसे करूँ? तो उन्होंने बताया कि जैसे सूर्य प्रकाशमान होता है, ऐसे ही चिंतन करो कि खुदा प्रकाश रूप है। तो वह बेचारा वैसा ध्यान करने लगा। आकाशवाणी हुई, 'मूसा, तुम संसार में किसलिए भेजे गए हो? "इसलिए भेजा गया हूँ कि ये जो ईश्वर के जीव हैं, खुदा के बन्दे हैं, उनको खुदा के रास्ते पर लगाना।" आकाशवाणी ने कहा कि तुम तो उलटा कर रहे हो! क्या तुम कह सकते हो कि जिस सूर्य का ध्यान करने लिए उसको तुमने कहा है, वैसा ही मैं हूँ? एक सूर्य का प्रकाश नहीं, करोड़-करोड़ सूर्य का प्रकाश इकट्ठा हो जाए तो मेरी बराबरी कर सकता है? 'नहीं कर सकता। मूसा ने कहा। तब तो तुमने उस को बहुत थोड़ा बताया कि सूर्य के समान हमारा चिंतन करो! यह तो हमारी महिमा तुमने घटा दी। मूसा ने तुरंत माँफी मांग ली।

तो असल में मूसा भी खुदा की पूरी-पूरी महिमा नहीं जानते। जो-जो वर्णन करने वाले आचार्य हैं, पूरी-पूरी महिमा का वर्णन वे भी नहीं कर सकते। जब उपासना करना होता है, जब ध्यान करना होता है, जब चिंतन करना होता है तो एक कल्पना बनानी पड़ती है। जिसको निराकार ईश्वर बोलते और जो इसका ध्यान करते हैं, वे निराकार का ध्यान करते हैं कि निराकार की कल्पना करते हैं ? बड़ा भारी लंबा-चौड़ा, बड़ी लम्बी उम्र वाला और सर्व का उपादान, सर्व की सत्ता— यह सब क्या है ? यह केवल निराकार की कल्पना है। तो बाबा, जैसे तुमको निराकार की कल्पना करने का तुमको हक है, वैसे ही साकार वाले को साकार की कल्पना करने का हक है। काहे को बुद्धि में गड़बड़ डालते हो !

ये सब-के-सब अज्ञानी हैं। तो बोले कि अज्ञानी का कल्याण कैसे हो ? अज्ञानी का भी कल्याण होता है। ईश्वर यह कहे कि गीध हमको प्रेम न करे, क्योंकि उसकी जाति ज़रा पक्षी की है। ईश्वर यह कहे कि पिंगला हमारी भक्ति न करे, अजामिल हमारी भक्ति न करे— ऐसा नहीं है। ईश्वर की भक्ति अजामिल भी करता है, वृत्रासुर भी करता है। ईश्वर की भक्ति करने का अधिकार गीध को भी है, पिंगला को भी है। सब ईश्वर की भक्ति के अधिकारी हैं।

तो 'अविदुषोपि'। अरे भाई, तुम नहीं जानते कि यह क्या दवा है ? वैद्य को तो मालूम है। तो अज्ञानी-से-अज्ञानी मनुष्य और 'अनुभजतः'— सच्चा भजन उससे न बने, अनुकरण रूप भजन करे। 'अनुभजतः' में जो 'अनु' है, उसका अर्थ है— 'अनुकरण'। वह अनुकरण करे। जैसे महात्मा लोग सीताराम, सीताराम बोलेत हैं, वैसे बोले। जैसे वे माला फेरते हैं, वैसे वह फेरे'। जैसे वे शंकर जी को बिलपत्र चढ़ाते हैं वैसे वह भी चढ़ावे ! तो खुद न समझता होए, लेकिन अनुकरणात्मक भजन करे। यह क्या हुआ ? अपने जीवन में महान् औषध का सेवन हुआ।

'अगदराज इवोपयुक्तः'— भक्त ने क्या किया ? भगवान् के चरणों में से एक फूल उठा कर सूँघ लिया। तो गंध का उपयोग हुआ। उनकी छवि

लेकर उसने अपनी आँखों से गौर से देखा तो आँख से उपयोग हुआ। उनकी कथा कान से सुनी। पंढरपुर गए तो उनकी मूर्ति को दोनों हाथ से पकड़कर छाती से लगा लिया।

देखो जी, जो भगवान् को दुर्गम मानते हैं, उनके लिए दुर्गम हैं। जो उनको कठिन मानते हैं, उनके लिए कठिन हैं। और, जो सुगम मानते हैं, उनके लिए सुगम हैं। तो, दोनों हाथ से भगवान् की मूर्ति पकड़ भक्त हृदय से लगा लेता है।

तो भगवान् का उपयोग करो! कैसे उपयोग करो? उनके चरणारविन्द का यह उपयोग करो कि उनको हृदय से लगाओ। उनके हाथ का यह उपयोग करो कि उनको लेकर अपने सिर पर रख लो। भगवान् की वंशी का उपयोग करो कि कान से उसका श्रवण करो। यह अमृत है अमृत। जैसे भरने वाला मनुष्य अमृत का सेवन करे, उपयोग करे। 'उपयुक्तः' पद को केवल अमृत के साथ मत जोड़ो। 'ईश्वरः' के साथ जोड़ो! 'उपयुक्तः ईश्वरः' जब अपने जीवन में ईश्वर का उपयोग किया जाता है— यही अचिन्त्यशक्ति है, अचिन्त्य-प्रभाव है। यही भक्ति की शक्ति है कि अपने जीवन में ईश्वर का उपयोग करो। माने ईश्वर के साथ खाओ, ईश्वर के साथ पीओ, ईश्वर के साथ चलो, ईश्वर के साथ सोओ, ईश्वर के साथ बोलो, ईश्वर का हाथ पकड़ो, ईश्वर का पांव दबाओ। तुम्हारे कलेजे में कभी जलन होवे तो ईश्वर के चरणारविन्द अपनी छाती से लगाओ। 'उपयुक्तः'— भगवान् का उपयोग करो जीवन में! जैसे रोग होने पर औषधिका उपयोग किया जाता है, ऐसे यदि वासना रूप रोग तुम्हारे जीवन में है, विक्षेप रूप रोग तुम्हारे जीवन में है, दुःख रूप रोग तुम्हारे जीवन में है तो ईश्वर का उपयोग करो।

गोपियों ने साक्षात् ईश्वर का उपयोग किया था। **'कृष्णस्य तद्भगवतश्चरणारविन्दं'** (भागवत, १०.४७.६२)

गोपियों के हृदय में जब ताप होता था तो श्रीकृष्ण भगवान् के चरणारविन्द को अपने हृदय पर रखती थीं। जब उनका नाचने का मन होता

था तो उनके भुजदण्ड को अपने कन्धे पर रखती थीं। गोपियों का अपने जीवन में अपने शरीर में, अपने मन में, वचन में जैसे कोई औषधि का उपयोग करता है, ऐसे श्रीकृष्ण का उपयोग था। इसका नाम है, 'भक्ति'।

तो **'साक्षात् श्रेयस्तनोति'**— इससे कोई परोक्ष कल्याण हो, परोक्ष मंगल हो— सो बात नहीं। ज़िंदगी भर रोते हैं कि हमने यह प्राणायाम किया, हमने यह प्रत्याहार किया, हमने यह धारणा की, हमने यह पंचदशी पढ़ी और यह ब्रह्मसूत्र का स्वाध्याय किया; लेकिन मनीराम? बोले कि जहां-के-तहाँ! एक इंच भी ऊपर नहीं उठे। बाबा, मन को ऊपर उठाने वाली यह भक्ति है। भक्ति में वह शक्ति है जो मन को ऊपर उठा दे। जीवन को दुःख और दोष से मुक्त कर दे। 'श्रेयस्तनोति'।

तो अब देखो— साक्षात् अनुभजतः, साक्षात् उपयुक्तः, साक्षात् श्रेयस्तनोति। भक्ति शास्त्र में ध्यान का अर्थ होता है, दर्शनसमानाकार वृत्ति। माने प्रेमपूर्वक, प्रीतिपूर्वकं दर्शन समानाकार वृत्तिध्यानं। विरोधी बनकर नहीं। रावण के वंश में नहीं जाना। हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु का वंशधर नहीं बनना। प्रेम तो होवे हृदय में और दर्शनसमानाकार वृत्ति हो। दर्शन समानाकार वृत्ति क्या? जैसे आप इस हाल में बैठे हो और एक-दूसरे को देख रहे हो। तो जैसे खुली आँख से इस हॉल में बैठे हुए लोग दिख रहे हैं, ऐसे बंद आँख से वृन्दावन, राधाकृष्ण, उनकी लीला, उनके हाव-भाव, उनकी चेष्टा देखना— इसका नाम भक्ति में ध्यान होता है। तो, खुली आँख से जैसे दुनिया दिख रही है, ऐसे बंद आँख से भगवान् की लीला को देखना। कृष्ण---कृष्ण---कृष्ण। भस्म कर दे दोषों को यह कृष्णः यह कृष्ण वह अमृत है कि जीवन को अमृतमय बना देता है। अब जिन्होंने अपने जीवन में श्रीकृष्ण का उपयोग किया; उपयोग क्या उपभोग किया— वे गोपियाँ धन्य-धन्य हैं।

हम लोग किसका उपभोग करते हैं और किसका उपयोग करते हैं?

लोग छोटी-छोटी बात में फँसे हुए हैं। वे समझते हैं कि यही सब कुछ है। लोग सोचते हैं कि कोई उनका पैसा न छीन ले जाए। कोई उनकी औरत न छीन ले जाए! कोई उनके बेटे से कोई काम न ले ले! आजकल बड़े-बूढ़े सत्संग में जाते हैं और बच्चों से कहते हैं कि नहीं, तुम्हारी बुद्धि कच्ची है अगर वहाँ जाकर वहाँ की कोई बात पकड़ ली, ग्रहण कर ली! तब तो काम ही बिगड़ जाएगा। बच्चे तो सत्संग में जाकर बिगड़ जाएँगे और खुद बनने के लिए जाते हैं। तो सत्संग तो बिगाड़ने की जगह हो गयी न! बड़े-बूढ़ों के लिए सत्संग नहीं होता है, बच्चों के लिए ज्यादा होता है। बड़े-बूढ़े तो कुछ मरने के डर से करते हैं, कुछ घर में जो नयी-नयी बहू आती है और बेटे तगड़े हो जाते हैं तो तिरस्कार करते हैं तो बड़े-बूढ़े लोग सत्संग में जाकर अपना समय काटते हैं। और, बच्चों पर जो सत्संग का संस्कार पड़ेगा, वह तो उनको बुढ़ापे तक काम देगा।

तो गोपियों का जीवन धन, उनका प्राणेश्वर, उनका प्राण-सर्वस्व जो उनके कानों में कुण्डल बनकर बैठा जो उनके हृदय पर मणि बनकर बैठा, जो उनकी आँखों में अंजन बनकर बैठा, जो उनके मुख में कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण बनकर बैठा। ऐसा उपयोग उन्होंने किया। 'श्रेयस्तनोति'।

आप क्या चाहते हो? आप निश्चिय समझो कि अगर भगवान् का नाम लेकर आप धन चाहते हो तो धन मिलेगा। भोग चाहते हो तो मिलेगा। धर्म चाहते हो तो मिलेगा। मोक्ष और ज्ञान चाहते हो तो मिलेगा। अगर किसी को रोग हो और मिटाना चाहता हो तो वह भगवान् के नाम से मिटेगा। और, अगर अपना हृदय शुद्ध करके उसको भगवान् के प्रेमामृत से भरना चाहते हो तो भगवान् का आश्रय लेने से, भगवान्नाम का उच्चारण करने से वह भी मिलेगा। जो कृपा, जो प्रसाद गोपियों को मिला, संसार में वह प्रसाद और किसी को नहीं मिला।

नायं श्रियोङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरूचां कुतोन्याः।

रासोत्सवेस्य भुजदण्ड गृहीतकण्ठ—
लब्धाशिषांय उदगाद्व्रजबल्लवीनाम् ॥

(१०.४७.६०)

उद्धव जी लोट-पोट हो रहे हैं प्रेम में ! अरे भाई, गोपियों को भगवान् की ओर से जो प्रसाद मिला, वह किसी को नहीं मिला ! नारदादि को जो प्रसाद मिला, सो नहीं । शिवादि को जो प्रसाद मिला, सो नहीं । गोपियों को जो प्रसाद मिला ! ! यह बात तो शुकदेव जी पदे-पदे बोलते हैं । ग्वालों के बारे में भी उनका ऐसा कहना है—

यत्पाद पांसुर्बहुजन्मकृच्छ्रतो,
धृतात्मभिर्योगिभिरप्यलम्यः ।
स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः,
किं वर्ण्यर्ते दिष्टमतो व्रजौकसाम् ॥

(भागवत् १० १२. १२)

जिनके चरणों की धूलि बहुत जन्म के अभ्यास से भी बड़े-बड़े योगियों के लिए दुर्लभ है; वे जिनकी आँखों के सामने खड़े हैं, उन ब्रज के ग्वालों के सौभाग्य का हम क्या वर्णन करें !

जब नन्द-यशोदा की बात आती है, तब कहते हैं कि जो प्रसाद यशोदा मैय्या को मिला, वह प्रसाद—

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्ग संश्रया ।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्तिदात् ॥

(भागवत् १०.८.२१)

ब्रह्मा को नहीं मिला, बेटा हैं तो क्या ? शंकर जी आत्मा हैं तो क्या ? उनको भी वह प्रसाद नहीं मिला । लक्ष्मी जी वक्षस्थल पर नित्य विराजमान अपनी अर्धांगिनी हैं तो क्या ? तो क्या ? उनको भी नहीं मिला !

यहाँ उद्धवजी महाराज कह रहे हैं— 'नामं श्रियोङ्ग ३ नितान्तरतेः प्रसादः' लक्ष्मी जी कैसी हैं ? नितान्त रतिवाली हैं । भगवान् के प्रति नितान्त प्रेम लक्ष्मीजी को प्राप्त है । इस जगत् की स्वामिनी हैं और वेंकटपति भगवान् के वक्षस्थल पर नित्य निवास करने वाली हैं । परंतु, यह प्रसाद यह कृपा !

'रासोत्सवेस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ—
लब्धाशिषोय उदगाद् व्रजबल्लवीनाम् ।

रासोत्सव में, रास के आनंद में अपने हृष्ट-पुष्ट-बलिष्ठ भुजदंड में गोपियों का कंठश्री कृष्ण ने पकड़ा और गोपियों ने उनके स्कंध पर अपने भुज दण्ड को रखा और उस समय जो नृत्य हुआ, वह जो ता-ता थई, ता-ता थई हुआ— वह सुख गोपियों को ही प्राप्त हुआ ।

पादन्यासैर्भुज विधुतिभिः सस्मितैर्भ्रू विलासै,
भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः ।
स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो,
गायन्त्यस्तं तडति इव ता मेघचक्रे विरेजुः ।।

(भागवत, १०.३३.८)

जैसे काले-काले बादल में जगह जगह तरह-तरह की बिजली चमक रही हो, वैसे श्रीकृष्ण को पकड़ कर गोपियों ने रास में घेर लिया ।

एक गोपी, एक कृष्ण । एक गोपी, एक कृष्ण । वह आनंद की वर्षा हुई ! वहाँ आनंद ने नृत्य किया, वहां ज्ञान ने नृत्य किया, वहां सत्य ने नृत्य किया ! वहां फड़कता हुआ ज्ञान, फड़कता हुआ सत्य, फड़कता हुआ आनन्द है । वहाँ निष्क्रिय सत्, निष्क्रिय चित् और निष्क्रिय आनन्द नहीं; सक्रिय सत्-चित् और आनन्द है । यह सगुण ईश्वर का आनन्द है ! और, यह प्रसाद अत्यन्त प्रेमरति नित्य वक्षस्थल स्थायिनी सर्वेश्वरी भगवती लक्ष्मी को प्राप्त नहीं हुआ; जिनके अंग-अंग से कमल की गंध निकलती है और जिनके शरीर पर शुद्ध कांति है, उन उत्कर्षिनी, विमदा, योगा आदि शक्तियों को भी वह प्रसाद प्राप्त

नहीं हुआ। फिर संसार में और किसी को यह प्रसाद प्राप्त होगा ही कहां से?

उद्धव जी कहते हैं कि, बस-बस

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च-हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

(१०.४७.६१)

अब मैं कृष्ण के पास भी नहीं जाना चाहता! 'उद्धवजी, तब तुम कहाँ रहना चाहते हो?' 'वृन्दावन में रहना चाहता हूँ।' 'गोपी होना चाहते हो?' 'राधे श्याम! हमारा ऐसा सौभाग्य कहाँ? उनके चरणों की धूलि मिले, वही बहुत है।'-

आदर्शभूता ब्रजगोपिकाएँ

भक्ति से भगवान् भी झुक जाते हैं । वृंदावन में अनेक प्रसंग ऐसे आते हैं, जहां भगवान् के झुकने का वर्णन किया जाता है । भगवान् प्रणाम करते हैं । माने बड़े से छोटे हो जाते हैं ।

'भक्तिरेवैनं नयति, भक्तिरेवैनं दर्शयति, भक्ति रेवैनं गमयति'— भक्ति ही भगवान् को पकड़ कर जीव के पास ले आती है, भक्ति ही भगवान् का दर्शन कराती है, भक्ति ही भगवान् का ज्ञान कराती है । भगवान् भक्ति के वश में हैं । **'भक्तिरेव गरीयसी'** । **'भक्तिरेव भूयसी'** । भक्ति ही सब से बड़ी वस्तु है ।

एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण वृन्दावन में कही वृक्ष की, लता की, फूलों की शोभा देख रहे थे । इतने में हवा का एक झोंका आया । झोंका आते ही शरीर में रोमाञ्च हुआ, हृदय गद्‌गद् हो गया और झट सिर झुका लिया । भगवान् ने सिर झुका लिया, यह क्या हुआ ?

यस्याकदापि वसनांचल खेलनोत्थ,
धन्याऽतिधन्य पवनेन कृतार्थमानी ।
योगीन्द्र दुर्गमगतिर्मधुसूदनोऽपि,
तस्यै नमोस्तु वृषभानुभुजो विशेपी ।।

एक दिन राधा रानी का आँचल हिला, उस से हवा निकली और जिस वायु में वह हवा मिली, वह धन्य, अतिधन्य हो गया । और, उस वायु ने आकर जब श्रीकृष्ण को गुदगुदाया— अहा, यह तो वृषभानुनंदिनी श्रीराधा रानी के आँचल की हवा है, तो आनन्द में भरकर, मग्न होकर उन्होंने उस दिशा को, जिधर से वायु आया था, प्रणाम किया आओ भाई, हम भी उस दिशा को प्रणाम करें, जिसमें वृषभानु नंदिनी रहती हैं !

बात यह है कि बड़े का बड़ा होना तो स्वाभाविक है । उसका छोटा होना, यही उसमें विशेष अनुग्रह का उदय होना है । क्योंकि जो लोग छोटे होते हैं,

उनको अपने बड़प्पन की रक्षा के लिए बहुत फ़िक्रमन्द रहना पड़ता है। और, जो असली बड़े होते हैं, उनका अपना बड़प्पन कहीं छूट जाएगा कि कोई छीन लेगा— इसका कोई डर नहीं रहता।

एक दिन मैंने मथुरा स्टेशन पर देखा कि एक करोड़पति सज्जन थे, गाढ़े की धोती और गाढ़े का कुर्ता घुटने तक पहने हुए, सीप के बटन लगे हुए ऐसे ही प्लेट फॉर्म पर घूम रहे थे और उन्हीं को मिलने के लिए मथुरा के एक सज्जन आए थे— उनके पास बीस-तीस हज़ार की सम्पत्ति होगी। वे रेशमी कुर्ता, सोने का बटन लगाए थे। अब देखो, बीस-तीस हज़ार वाले को तो यह डर था कि कहीं कोई हम को गरीब न समझे और जो करोड़पति था, उस को यह था कि लोग हम को धनी न समझें। नारायण कहो! तो बड़ा जब छोटी पोशाक में आता है तो उसकी इज्ज़त बढ़ जाती है।

हमारे एक मित्र बीकानेर में घूम रहे थे। उन्होंने देखा कि चपरासी की पोशाक पहने हुए एक दुकान पर महाराज गंगासिंह बैठे हैं और कुछ मामूली सौदा ख़रीद कर रहे हैं। अब जब उन्होंने देखा तो झट अपनी सवारी पर से उतर पड़े। लेकिन महाराज ने आँख से डांटा कि यहां कुछ जाहिर मत करना। तो वे चपरासी बनकर अपनी रियासत में यह देखने के लिए घूमते थे कि लोग हमारी अनुपस्थिति में, हमारे अनजान में, हमारे बारे में कैसी बात-चीत करते हैं। लोग एक-दूसरे के साथ कैसा व्यवहार करते हैं! महाराज होकर ऐसी पोशाक में? अरे, महाराज का यह बड़प्पन है। यह उनका छुटप्पन नहीं है।

केवट मीत कहे सुख मानत,
बानर बन्धु बड़ाई।
रघुवर रावरि यहै बढ़ाई॥

हे भगवान् राम, आपका यही बड़प्पन है! इसलिए जो सारी सृष्टि का मालिक है, वह अगर अपनी मिल्कियत लोगों को दिखावे तो यह बड़प्पन नहीं है। वह किसी के घर में घुस कर चोरी करे, यह उसका बड़प्पन है।

सारी सृष्टि के मालिक का बड़प्पन माखन-चोर होने में है । और जो अच्युत है, अखंड ब्रह्मचारी है, जिसमें द्वैत है ही नहीं, स्त्री-पुरुष का भेद है नहीं, वह चीर हरण करे— इसमें उसका बड़प्पन है । जो निःसंग है, निष्क्रिय है, निर्विकार है— वह रास-लीला में नाचे, तब उसका बड़प्पन होता है । यह ईश्वर की लीला का स्वरूप ऐसा है ।

अब गोपियों की बात सुनो । गोपियों का भी बड़प्पन इसी में है कि वे यदि अपने स्वरूप से प्रकट होतीं तो इसमें उनका बड़प्पन नहीं था । जब उनका मालिक, उनका प्यारा ग्वाला बनकर आया; तब वे ग्वालिन बनकर आयीं । जब निरक्षर भट्टाचार्य, 'क' की पहचान नहीं । श्रीकृष्ण क्या बनकर आए ? बिल्कुल निरक्षर भट्टाचार्य ! तो ग्वालिनियां यदि पढ़ी-लिखी होतीं, तो उनकी शोभा होती ? असल में प्रेमस्वरूपा गोपियों का बड़प्पन भी इसी में है कि जैसे वह चीरहारी बनकर, रासनर्त्तक बनकर, माखन-चोर बनकर, ग्वाले बनकर अपने बड़प्पन को छिपाकर छोटे बनकर जैसे प्रकट हुए, ग्वालिनें भी वैसे ही प्रकट होवें ! परन्तु, इसी रूप में गोपियों की जो महिमा है—

रासोत्सवेऽस्य भुजदण्ड गृहीत कण्ठ—
लब्धाशिषांय उदगद् व्रजवल्लवीनाम् ।

उनको क्या सौभाग्य मिला ! ! यशोदा मैय्या को वह सौभाग्य मिला, जो ब्रह्मा, शंकर को नहीं मिला । ग्वाल-बालों को वह सौभाग्य मिला, जो ब्रह्मा, शंकर को नहीं मिला । उद्धव को वह सौभाग्य मिला, जो ब्रह्मा, शंकर को नहीं । भागवत में यह बात जगह-जगह साफ़ है । स्वयं श्रीकृष्ण कहते हैं कि उद्धव, मैं अपने को भी उतना प्यार नहीं करता, जितना अपने भक्तों से प्यार करता । मैं जितना गोपियों से प्यार करता हूँ, उतना लक्ष्मी को भी प्यार नहीं करता । जितना यशोदा मैय्या से प्रेम करता हूँ, उतना ब्रह्मा और शंकर को भी प्रेम नहीं करता ।

देखो यहां बिल्कुल स्पष्ट रूप से यह बताते हैं कि और लोगों से गोपियों का सौभाग्य भले ही सर्वोपरि होवे, पर लक्ष्मी जी का सौभाग्य तो गोपियों

से सर्वोपरि है, सो बात नहीं। भले ही लक्ष्मी हर समय भगवान् के चरणारविन्द को पकड़कर अपनी गोद में रखती हैं। एक रूप से उनके वक्षस्थल पर रहती हैं। हर समय भगवान् के वक्षस्थल से लगे रहना और उनके चरणारविन्द को दबाते रहना--- ये लक्ष्मी का दो रूप हुआ। प्रेम में एक तो हृदय से हृदय का मिलना और एक सेवा--- यह प्रेम की दो अभिव्यक्ति है। हृदय से हृदय का मिलना माने यह नहीं कि छाती के चाम से छाती का चाम मिले। दिल से दिल मिले माने मन से मन मिले, बुद्धि से बुद्धि मिले। राय एक हो, विचार एक हो--- इसका माने दिल मिलना होता है। तो प्रेम में दो बात है— एक तो दिल से दिल मिल गया और दूसरी बात, दिन-रात सेवा करने में तत्पर हैं। ये दोनों बात लक्ष्मी को प्राप्त है। वे भगवान् के दिल से लगी रहती हैं माने कभी उनका मतभेद नहीं होता है, रूठती नहीं हैं। नारायण और लक्ष्मी की कभी लड़ाई नहीं होती। प्रेम-कलह कभी नहीं होता। क्योंकि अब गवाह तो खुद ही बन गयी न। माने अगर छाती पर न हों, कहीं घर में ही रह जाएँ तो बाहर से आने पर यह शंका करें कि पता नहीं नारायण कहां से आ रहे हैं! और, जब हर समय छाती पर चढ़ी हैं तो शंका करने का तो कोई अवसर ही नहीं है। इसलिए, दोनों में कभी प्रेम-कलह, मान नहीं होता। तो बोले भाई कि लक्ष्मी का सौभाग्य सबसे बड़ा। क्योंकि, दिल से दिल मिला और सेवा में तत्पर! फिर गोपियों का सौभाग्य उनसे बड़ा कैसे होगा? गोपियों का सौभाग्य तो उनसे छोटा होना चाहिए। क्योंकि, गोपियों को तो विरह भी मिलता है।

असल में वैष्णवों की प्रक्रिया का विचार बड़ा विलक्षण होता है। श्वेतद्वीपाधिपति, गर्भोदशायी और कारणार्णवशायी और परम व्योमनाथ और श्रीकृष्ण— यह उनकी पद्धति भगवत्-तत्त्व विचार की है। श्वेतद्वीपाधिपति, गर्भोदशायी कारणार्णवशायी और परमव्योमनाथ— 'ये तुरीयतत्त्व के सीध में पड़ता है और श्रीकृष्ण जो हैं, ये ऐश्वर्य रहित ब्रह्म हैं। आप थोड़ी-सी प्रक्रिया की बात ध्यान में ले आओ! ब्रह्म में ऐश्वर्य है कि नहीं? ब्रह्म में ऐश्वर्य नहीं है। क्योंकि, ऐश्वर्य मायोपाधिक होता है। जहां

अपना रोब-दाब दिखाना होता है, वहां ईश्वरता दिखानी पड़ती है कि हम इतने बड़े ! अपने प्रेमियों के बीच में ईश्वरता नहीं दिखाई जाती है । वहां तो साधारणीकरण हो जाता है । मिल जाते हैं । तो श्रीकृष्ण मधुर ब्रह्म है, ईश्वरब्रह्म नहीं हैं । 'मधुर ब्रह्म' माने मीठा ब्रह्म । तो वहां तो माया का अपवाद कर देने से ब्रह्म शुद्ध हो गया और यहां ब्रजवासियों का प्रेम देखकर अपना ऐश्वर्य उनके ऊपर न्योछावर कर दिया और न्योछावर कर हरिद्वार की तरफ फेंक देने से मधुर हो गया । तो ये जो कृष्ण हैं, ये मधुर ब्रह्म हैं । ऐश्वर्य-रहित कृष्ण ! इसमें अपनी ईश्वरता नहीं हैं ।

तो नारायण, परमव्योमनाथ की जो लक्ष्मी हैं, उनको संयोग तो प्राप्त है; परंतु संयोग प्राप्त है, क्योंकि वे स्वयं चरणों को पकड़ कर बैठी हैं और स्वयं छाती पर बैठी हैं । माने यह तो लक्ष्मी की प्रीति हुई कि वे नारायण को नहीं छोड़ती हैं । अब ज़रा कृष्ण की ओर देखो !

रासोत्सवेस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ—
लब्धाशिषांय उदगाद् ब्रजवल्लवीनाम् ।

कोई अकेले की बात नहीं है भाई ! बिलकुल चौड़े की बात है । रासमंडल की बात है, जहां 'बनिताशतकोटिभिराकुलिताः'— हज़ार, दो हज़ार, सोलह हज़ार नहीं । ब्रह्म-संहिता में आया कि सौ करोड़ को भी तिगुना करो । नहीं, तिगुना नहीं करो, असल में यह 'अनंत' का वाचक शब्द है । संख्या अपनी गिनती भी बताती है और अनंतता भी बताती है ।

एक बार किसी ने पूछा कि श्रीकृष्ण की सोलह हज़ार एक सौ आठ पत्नी थीं— यह बात क्या सच्ची है ? मैंने कहा कि भलेमानुस, यह तो बहुत कम करके बताया हुआ है । जो इसके अलावा थीं, उनको तो अभी गिना ही नहीं है । कितनी थीं ? सृष्टि में जितनी मनोवृत्ति । जितने मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़े-मकौड़े आदि जितने प्राणी हैं और भूत में हुए हैं, इस समय हैं और भविष्य में होंगे और उनके मन में जितनी वृत्तियां उठती हैं, उनकी अगर गिनती की जा सके तो श्रीकृष्ण की पत्नियों की गिनती की जा सकती है ।

क्योंकि, प्रत्येक वृत्ति ही— चाहे वह किसी भी प्राणी के अंतः करण में,— भूत में, वर्तमान में और भविष्य में उठती हो, वह जिसमें जागती है और जिसमें सोती है, वह प्रभु ही उसका पति है और वही कृष्ण है । तो यह सोलह हज़ार की गिनती तो दूसरे हिसाब से की हुई है ।

तो रासोत्सव में , रास के आनन्द में— यह 'सव' नहीं 'उत्सव' है । 'सव' माने यज्ञ होता है । 'उत्सव' माने यज्ञ का कर्ता, यज्ञ के साधन और यज्ञ के फल जहां तक पहुँचते हैं, उससे यह ऊपर की चीज़ है और साक्षात् रस-ही-रस है । 'रसोवैसः रसं हि वायंलब्ध्वा आनन्दी भवति' । 'रस' माने ब्रह्म और 'रास' माने रस समूह, जहां ब्रह्म-ब्रह्म-ब्रह्म । प्रत्येक दो गोपी के बीच में एक ब्रह्म । नहीं, जितनी गोपी उतना ब्रह्म ! अरे, गोपी की जितनी आँख उतना, गोपी की जितनी मनोवृत्ति उतना !

जित देखौं तित स्याममयी है ।

अब उसमें 'भुजदण्डगृहीत कंठलब्धाशिषा' । लक्ष्मी ने पांव पकड़ा, छाती पर डेरा लगाया । और उधर गोपियों से क्या हुआ ? स्वयं श्रीकृष्ण ने उनके कंध पर अपना भुजदंड रखा । 'दण्ड' माने कठोर, कोमल नहीं । कृष्ण ने जब गोपियों के कंधे पर हाथ रखा तो कमल के समान कोमल हाथ नहीं 'भुजदण्ड'— माने जैसे डंडा रखा हो । कठोर हाथ रखा । कठोर हाथ क्यों रखा ? इसलिए कि कोई क्षण भर के लिए भी इधर-उधर जाने, न पावे ! पकड़ कर रखा । 'भुजदण्डगृहीत कंठ' । लक्ष्मी ने पांव पकड़ा और उधर श्रीकृष्ण ने अपने भुजदण्ड से गोपियों की गर्दन पकड़ी । ये हमारे साथ सटी रहें ! हम को छोड़ कर कहीं एक इंच भी न रहें । हमारे और उनके बीच में हवा निकलने का रास्ता भी न रहे ! हमारे और उनके बीच में किसी प्रकार का भी व्यवधान किसी प्रकार का अवकाश न रहे । लगाए हुए हैं अपने बगल में ! !

क्यों जी, गोपी कृष्ण से प्रेम करती हैं कि कृष्ण गोपी से प्रेम करते हैं ? अब लक्ष्मी के साथ तुलना करो । 'भुजदण्डगृहीतकण्ठलब्धाशिषां' ।

श्रीकृष्ण का यह प्रेम देखकर गोपियों की जो आशा थी, जो अभिलाषा थी, जो लालसा थी वह पूर्ण हो गयी। 'आशिष' शब्द का अर्थ संस्कृत में लालसा, अभिलाषा, आशा होता है। तो, 'ब्रजबल्लवीनाम्'— ऐसी जो ये ब्रजवल्लभी हैं, ब्रज की गोपियां, ब्रजांगना ! 'वल्लभ' माने प्यारा होता है और 'बल्लव' माने गोप होता है। तो ये जो ब्रज की गोपियां हैं, इनको 'यो यं प्रसादः उदगाद्'— उनके हृदय में जो कृष्ण का प्रसाद उदय हुआ; 'उदय हुआ'— का अर्थ है कि पहले से था। सूर्य पहले से रहता है, तब उदय होता है। जो छिपा हुआ था, वह प्रकट हो गया। माने गोपियों के ऊपर श्रीकृष्ण का जो प्रसाद है, वह नित्य-सिद्ध है। तो जो प्रसाद प्रकट हुआ, वह 'नितान्तरतेः स्त्रियः न'— हे अंग, प्यारे उद्धव ! साफ़-साफ़ बात यह तुम को बताते हैं कि जो कृपा, जो प्रेम, जो प्रसाद गोपियों के प्रति श्रीकृष्ण का प्रकट हुआ, वह अत्यंत प्रेमवती लक्ष्मी के प्रति नहीं और दूसरी जो—भू देवी, लीला देवी आदि शक्तियाँ हैं, उनके प्रति तो होगा ही कहाँ से ? भले ही उनकी अंग में से कमल की गंध निकलती है ! और फिर दूसरों की तो चर्चा ही क्या ?

'यो यं प्रसादः ब्रजबल्लवीनाम् उदगाद् स स्त्रियो न उदगाद्'।

'नितान्त रति' माने प्रीति की पराकाष्ठा। तो नितान्त रतेः प्रसादः है, कृष्णस्य प्रसादः नहीं है। तो प्रीति का प्रसाद जैसा गोपियों के हृदय में उदय हुआ, वैसा प्रसाद लक्ष्मी के हृदय में उदय हुआ क्या ? भई, प्रीति की जो अंतिमदशा गोपियों के हृदय में प्रकट हुई, वह लक्ष्मी के हृदय में क्या प्रकट हुई है ? नहीं हुई। अतः वे भी गोपियों के समान सौभाग्य नहीं पायीं।

देखो, जब निर्गुण का वर्णन करते हैं, तब चतुष्पाद करके वर्णन करते हैं और जब सगुण ईश्वर का वर्णन करते हैं, तब चतुर्बाहु करके वर्णन करते हैं। क्योंकि, बाहु में तो कर्तृत्त्व होता है और पाद में गति होती है। तो पूर्णता समझाने के लिए पाद की कल्पना करते हैं और शक्ति समझाने के लिए बाहु की कल्पना करते हैं। महात्मा लोग किस ढंग से क्या बात समझाते हैं, यह

देखो। तो सगुण ईश्वर की शक्ति बताने के लिए उसको चतुर्बाहु बोलते हैं और उसकी पूर्णता बताने के लिए उसमें चतुष्पाद बोलते हैं। तो नारायण की पूर्णता बताने के लिए उनको चतुर्भुज बोलते हैं। चतुर्भुज कैसे हैं? बोले कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष— चारों पुरुषार्थ अपने भक्तों को देने के लिए चतुर्भुज हैं। असल में जिस को विश्व, तैजस, प्राज्ञ, तुरीय बोलते हैं, ये चार पाद हैं और सगुण की यही भुजा हैं। उन्हीं को राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न अथवा वासुदेव, प्रद्युम्न, संकर्षण, अनिरुद्ध कहते हैं। यह जो चतुर्व्यूह है, यही मानो चार बाहु हैं। ये चार पुरुषार्थ देने के लिए है। यह अंतःकरण में जो मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार— ये चार विभाग हैं, इनके साथ उनका संबंध है। तो जो परावर ब्रह्म माने निर्गुण और सगुण दोनों को जानें, वह ज्ञान और भक्ति के रहस्य को समझ सकता है। और, जो केवल निर्गुण को जानें और सगुण का केवल अपवाद करके छोड़ दे। तो अपवाद विवेक की पराकाष्ठा है और औपाधिक भेद में अरूचि वैराग्य की पराकाष्ठा है। उपाधि का अपवाद कर देना— अंतःकरण की उपाधि, अविद्या की उपाधि, माया की उपाधि, व्यष्टि की उपाधि, समाष्टि की उपाधि— इनका विवेक करके इनका अपवाद कर देना कि ये परमात्मा का स्वरूप नहीं, यह विवेक की पराकाष्ठा है और अंतःकरणादि उपाधियों के द्वारा जो भोग प्राप्त किए जाते हैं, उनमें रूचि न होना यह वैराग्य की पराकाष्ठा है। अब ये विवेक और वैराग्य जब पूर्ण होते हैं तब परमात्मा के स्वरूप का बोध होता है और बोध होने पर अविद्या की आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है और अविद्या की निवृत्ति ही मोक्ष है। उसके सिवाय मोक्ष नाम की और कोई वस्तु नहीं।

अब ये बताते हैं कि गोपियों की श्रीकृष्ण के प्रति नितान्तरति थी। उसमें माया का संबंध नहीं जोड़ना। तो नारायण जो हैं, वे परमात्मा का सर्वोत्कृष्ट सगुण स्वरूप है और लक्ष्मी जी परमात्मा की स्वरूपभूता शक्ति हैं। इस शक्ति को बहिरंगा शक्ति, तटस्थाशक्ति और अंतरंगा शक्ति बोलते हैं। ह्लादिनी, संधिनी, संवित् भी नाम हैं। सत्-शक्ति को 'संधिनी' बोलते हैं और 'चित् शक्ति को 'संवित्' बोलते हैं और आनंद-शक्ति को 'आह्लादिनी' बोलते

हैं। तो यह जो आह्लादिनी है, यह सगुण ईश्वर का स्वरूप है। शक्ति और शक्तिमान में भेद नहीं होता। अब देखो, यह प्रीति क्या है ? सांख्यवादी कहते हैं कि सत्त्वगुण का विकार जो तदाकार-वृत्ति है, उसको प्रीति अथवा भक्ति बोलते हैं। तो भक्ति एक प्राकृत-वृत्ति है, ऐसा सांख्य का सिद्धांत है और मायिक-वृत्ति है माने माया का परिणाम है, यह वेदान्तियों का सिद्धांत है। वेदान्तियों में भी अविद्या का परिणाम है, अविद्यामूलक अंतः करण का परिणाम है— ऐसा माना गया है। जो सगुण ईश्वरवादी हैं, वे कहते हैं कि यह ईश्वर की शक्ति है। और, जो अत्यंत उच्चकोटि के सगुण साकारवादी हैं, वे शक्ति और शक्तिमान में भेद न मानकर जैसे आनंद ईश्वर का स्वरूप है, वही स्त्रीत्व विवक्षा में आह्लादिनी के नाम से कहा जाता है। सच्चिदानंद में आनंद और आह्लादिनी— ये दोनों केवल स्त्रीलिंग और पुलिंग शब्द का भेद है; वस्तुतः तात्त्विक भेद नहीं है। उसी आह्लादिनी को सर्व लक्ष्मीमयी, सर्वकान्ति सम्मोहिनी परा श्रीराधारानी कहा गया है। बिना उनके श्रीकृष्ण का कोई स्वरूप ही नहीं है।

तो नारायण, नितांतरति रूपा जो राधा रानी हैं, उनका जो प्रसाद है— वह जो उनकी अंशभूता गोपियों में प्रकट है, वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है।

अच्छा, प्रीति का इतना वर्णन न करके, उद्धव जी की अभिलाषा देखो !

आशामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां,
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा,
भेजुर्मुकुन्द पदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

उद्धवजी बोलते हैं कि मेरे लिए सबसे बड़े सौभाग्य की बात क्या है ? देखो, असल में यदि ईश्वर की प्राप्ति, श्रीकृष्ण की प्राप्ति की लालसा अपने जीवन में लाना चाहते हो तो किसी लालसा वाले का संग करो। तब पता चलेगा कि लालसा में मज़ा क्या है ? विरक्त होना, त्यागी होना, असंग

होना— ये सब दूसरी बात है। और, जब कृष्ण-प्राप्ति की लालसा करके, बल्कि भक्त लोग कृष्ण-प्राप्ति की लालसा नहीं करते; कृष्ण-प्रेम की लालसा करते हैं। कृष्ण मिले चाहे मत मिले, हमें तो मिले कृष्ण का प्रेम ! कृष्ण से भी बड़ा कृष्ण का प्रेम है। क्योंकि, कृष्ण को नचाने वाला कौन ? कृष्ण को नचाने वाला कृष्ण का प्रेम ! तो कृष्ण-प्रेम की लालसा जिनके अंदर है, उनका सत्संग करो ! तब देखो उसमें क्या आनंद आता है ! !

तो उद्धव जी कहते हैं कि हमें तो इनका गोपियों का ही सत्संग चाहिए। 'इन गोपियों का सत्संग तुमको कैसे मिलेगा' ? बोले कि एक जन्म नहीं, दो जन्म, दस जन्म, बीस जन्म सही— कभी-न-कभी तो मिलेगा ! 'कैसे मिलेगा' ? बोले कि,

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां।

हे विधाता ! हे नारायण ! हे कृष्ण ! अब मेरा मन यहां से कहीं जाने का नहीं हैं। मैं चाहता हूँ कि ब्रज की रज में यह मेरा शरीर, यह मेरी माटी मिल जाए। इस माटी में माटी मिलाकर तुम क्या चाहते हो ? यह चाहता हूँ कि यहां गुल्म, लता, औषधि कुछ मैं बनूँ। चमेली, गुलाब आदि की छोटी-छोटी झाड़ी मैं बन जाऊँ, चमेली की लता बन जाऊँ, यहाँ का जौ बन जाऊँ, गेहूँ बन जाऊँ। उद्धव जी, आप ऐसा क्यों होना चाहते हो ? बोले कि गोपियों के चरणों की धूलि हमको मिले। बहुत बड़े एवं ऊँचे पेड़ बन जाएँगे तो वह धूलि उड़कर जल्दी से हमारे सिर पर नहीं पहुँचेगी और छोटे-छोटे गुल्म, लता, औषधि आदि बनेंगे तो धूलि ज़ल्दी पहुँचेगी ! और, बाबा यह तो वृन्दावन है। यहां पर सिर उठाकर बड़ा वृक्ष बनना उचित नहीं है ! यहां तो नन्हा-सा पेड़ बनकर, पौधा बनकर रहना उचित है ! जिससे लोगों के चरण मेरे ऊपर पड़ें !

अच्छा, उद्धवजी ! तुम यहां इनके चरणों की धूलि जिनके ऊपर पड़े, ऐसा कोई घास-पौध बनना क्यों चाहते हो ? प्रेमियों के चरणों की धूलि भाई,

बड़ी विचित्र होती है। उसके स्पर्श से अपने हृदय में भी प्रेम आ जाता है। अब जिसके हृदय में प्रेम नहीं है, वह कोई जीव थोड़े ही है !

वह हृदय नहीं है, पत्थर है।

भागवत में है, 'तदश्मसारं हृदयं' (२.३.२८)

वह दिल नहीं है, फौलाद का टुकड़ा है—जो भगवान् का नाम लेकर द्रवित नहीं होता, पिघलता नहीं। आँखों में आँसू नहीं आते, शरीर में रोमांच नहीं होता। क्या दिल है ? बड़े दिलदार बने फिरते हैं और, भगवान् से प्रीति नहीं ! ! जब तक दिल है, तब तक प्रीति रहे। दिल न रहे तो मत रहे। तो दिल होवे और प्रीति न होवे ?

तो वे गोपियाँ जिन्होंने स्वजन और आर्य पथ— अपने सगे-संबंधी और आर्योचित पंथ, इनको छोड़ दिया। आजकल तो भाई, नई प्रणाली तो यही है कि बच्चे घर में न पलें। जच्चा ख़ाना में पैदा होवे और राष्ट्रीय बच्चा घर में पले और वहीं स्कूल, कालेज में पढ़ें और अपने माँ-बाप को पहचानें नहीं ! तो उनके लिए स्वजन छोड़ना क्या मुश्किल होगा ? जो स्वजन को स्वजन जानते ही नहीं, उनके लिए छोड़ना कठिन कहाँ है !

मैंने सुना कि रूस में एक माँ अपने बच्चे को हफ्ते में एक बार मिलने के लिए जाया करती थी, तो कभी अंगूर ले जाए, कभी अनार ले जाए, कभी मिठाई ले जाए। एक दिन उस ने अपने बच्चे से पूछा कि बेटा, तुम क्या चाहते हो ?' तो उस बालक ने दोनों हाथ अपनी मां के गले में डाल दिया और बोला कि मुझे माँ चाहिए !

तो अब नयी सृष्टि ऐसी आ रही है कि जब लोग स्वजन को जानेंगे नहीं और धर्म को तो नयी सृष्टि कहती है कि यह तो लोगों के दिमाग में जहर भरा हुआ है। अतः न स्वजन रहे, न धर्म रहा। अब क्या रहेगा ? अब दुनिया में मोह रहेगा, राग-द्वेष रहेगा ! सो इस सृष्टि की तो चर्चा नहीं करना ! हम तो उन लोगों की चर्चा कर रहे हैं जिनके लिए ये सब छोड़ना दुस्त्यज था। आप का ध्यान 'दुस्त्यज' शब्द पर जाए, इसके लिए मैंने यह बात कही।

गोपियों के लिए स्वजन न हों सो बात नहीं। उनके पति इतना प्रेम करते थे कि ले-लेकर डंडा और दरवाज़ा बंद करके बैठते थे कि हम इन को घर से निकलने नहीं देंगे ! उनकी मां, उनके बाप, उनके भाई-बन्धु सब गोपियों को मानते थे कि ये तो हमारी सर्वस्व हैं। इतना प्रेम कुटुम्ब में गोपियों को प्राप्त था कि जिसकी कोई हद नहीं ! और, इतना प्रेम प्राप्त होने पर भी 'दुस्त्यज'-- जिनको छोड़ना बड़ा मुश्किल !

तुम्हें अपना धर्म छोड़ना मुश्किल लगता है ? अजी, धर्म छोड़ने में क्या लगता है ? कहो, आज ही सन्ध्या-वंदन छोड़ दें ! जनेऊ निकाल कर फेंक दें ! नहीं, गोपियों के लिए धर्म दुस्त्यज था। इस का मतलब है कि वे स्वभाव से धर्मात्मा थीं। स्वभाव से कुटुम्ब में उनकी प्रीति थी। उनके लिए धर्म दुस्त्यज था।

अपने दिल को टटोल कर देखो कि तुम्हारे लिए धर्म दुस्त्यज है ! अरे, धर्म तो छोड़ना सबसे सुगम है। अधर्म छोड़ना कठिन है। किसी को गुस्सा मत करना, किसी को गाली मत देना, किसी के साथ अनाचार, व्यभिचार मत करना, झूठ मत बोलना ! बड़ा दुस्त्यज है महाराज, यह भला हम कैसे छोड़ेंगे ! ! तो आजकल तो लोगों को अधर्म दुस्त्यज है ! और गोपियों के लिए धर्म दुस्त्यज था। आज प्रेमी का धन्धा ही यह है कि वह धर्म को न माने ! तो ऐसे नहीं।

गोपियों ने दुस्त्यज स्वजन और धर्म को छोड़कर आखिर किया क्या ? बोले कि 'भेजुर्मुकुन्दपदवी'— उन्होंने मुकुन्द पदवी का भजन किया। अरे, ध्यान करते-करते मुकुन्द हो गयीं। मुकुन्द की पदवी को उन्होंने प्राप्त किया। जैसे किसी को मिनिस्टर की पदवी मिल जाए, राष्ट्रपति की पदवी मिल जाए, महामहोपाध्याय की पदवी मिल जाए तो क्या होगा ? वह मिनिस्टर, राष्ट्रपति अथवा महामहोपाध्याय हो गया। तो गोपियों ने मुकुन्द की पदवी प्राप्त कर ली। गोपी बोलती थी— 'कृष्णोऽहं'— देख-देख, मैं कृष्ण हूँ। 'ललितांगतिम् पश्य'— देखो-देखो मेरी चाल ! अब भी तुम को विश्वास नहीं हुआ ! ! मैं ही कृष्ण हूँ, मैं ही कृष्ण हूँ !

'मुकुन्द' माने मुक्ति कुत्सितः यस्मात् स मुकुः प्रेमाः— 'मु' माने मुक्ति कुत्सित जिससे मुक्ति का जिसने तिरस्कार कर दिया, उसका नाम 'मुक' माने प्रेम। मुकुं ददादि इति मुकुन्दः— जो मुकु माने मुक्ति को भी नीचा दिखाने वाले प्रेम का दान करे, उसका नाम 'मुकुन्द'। मुखे कुन्दवत् हासो यस्य— जिनके मुखारविन्द पर मुस्कान हमेशा खिलती रहती है, उनकी पदवी गोपियों ने प्राप्त की।

एक बात पर आप का ध्यान खींचते हैं! ब्रह्मा जी भी कहते हैं कि ब्रजवासियों के चरणों की धूलि चाहिए। परंतु, किसी की भी चाहिए। **'कतमाङ्घ्रिरजोभिषेकम्'**। ब्रज की गाय, ब्रज की बकरी, ब्रज की भेड़— उनके पांव की ही धूलि हमारे ऊपर पड़ जाए! पर, उद्धव जी कहते हैं कि गोपियों के चरणों की धूलि हमारे ऊपर पड़ जाए! किसी के चरणों की धूलि नहीं, गोपियों के चरणों की ही धूलि चाहिए! तो दोनों का फ़र्क बताते हैं। ब्रह्मा अपराधी हैं और उद्धव भगवत्प्रेमी हैं। भगवत्प्रेमी नहीं, गोपी प्रेमी हैं। वे तो गोपियों के चेले बन गए। ब्रह्मा और उद्धव के भाव में जो तारतम्य है, उसका विचार कल करेंगे!

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्तत्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्द पदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

(१०.४७.६१३)

ईश्वर की प्राप्ति के दो साधन हैं, एक ध्यान और एक ज्ञान। निर्गुण-ब्रह्म का ज्ञान और सगुण-ब्रह्म का ध्यान। ध्यान से तद्भावापत्ति, तन्मयता और ज्ञान से अविद्या की निवृत्ति। ध्यान से सगुण-ब्रह्म में जो स्थिति होती है, वह अभ्यास साध्य है और ज्ञान से जो निर्गुण-ब्रह्म में स्थिति होती है वह साध्य नहीं है; वह सिद्ध है। केवल उसमें आवरण-भंग करने की ज़रूरत पड़ती है। यह तो अपनी अपनी रूचि और अधिकार और निष्ठा पर है कि आप किस साधन को अपनाते हैं। जिन लोगों को ध्यान की बात सुनने का नशा

हो जाता है, उनको ज्ञान की बात अच्छी नहीं लगती और जिनको ज्ञान की बात सुनने का नशा हो जाता है, उनको ध्यान की बात अच्छी नहीं लगती। सच पूछो तो यह विक्षिप्त प्रपंच भी परमात्मा का स्वरूप है। यह महात्माओं का अनुभव है। अतः ध्यान में आया हुआ स्वरूप परमात्मा नहीं है— ऐसा सोचना तो एकदम गलत है। तो आओ, ध्यान की बात करें!

हमने ऐसा अनुभव किया है कि जब क्रोध आता है या किसी से द्वेष होता है, ईर्ष्या होती है, स्पर्धा होती है, तो जिसके लिए दिल में दाह होता है उसकी मूर्ति ऐसी दिल में आ कर खड़ी हो जाती है कि हटाए नहीं हटती है। हम सोचते हैं कि दुश्मन की मूर्ति हमारे हृदय में न आवे और वह जबरदस्ती घुस जाती है। लेकिन उसके साथ जलन लगी रहती है। और, जब किसी के प्रति मन में काम आता है तो जिस के प्रति काम आता है उसकी मूरत-सूरत ऐसे मन में आती है कि मालूम होता है कि बस दिल में अगर कोई चीज़ है तो वही-वही है। साहित्य-दर्पण में एक बड़ा सुन्दर उदाहरण है—

'प्रासादे सा पथि-पथि च सा कोऽयमद्वैतवादः।

यह हमारे क्या अद्वैतवाद हो गया कि छज्जे पर भी वही है और रास्ते-रास्ते भी वही है।

तो जिसके प्रति मन में काम होता है, उस की स्मृति होती है। और, जब लोभ होता है तो बंडल-ही-बंडल नोट का दिखाई देता है। तो देखो, एक ध्यान की बात मिली कि जिससे राग होता है, उससे संबंध होता है, उसका ध्यान अपने चित्त में आता है। अब कहो कि हम डंडा मारकर उसको निकाल दें तो वह डंडा मार कर नहीं निकलता है। बल्कि जिद्दी आदमी हो तो डंडा मारने पर और सट जाए! तो यह काम है, राग है, आसक्ति है— इसी से संसार में ध्यान होता देखने में आता है। अब यदि सगुण साकार ईश्वर से राग हो जाए, आसक्ति हो जाए, प्रेम हो जाए, संबंध हो जाए— तो देखो उसका कैसा ध्यान होता है!! वर्णन आता है न कि 'नर राँची मैं न लखीं। एक मियाँ जी नमाज़ पढ़ रहे थे। तो कोई स्त्री अपने मित्र से मिलने जा रही

थी। तो नमाज़ के कपड़े पर पाँव पड़ गया। वे बड़े ही नाराज़ हुए, आग-बबूला हो गए। वह बोली कि मैं तो एक मनुष्य के प्रेम में पागल हूँ और मैंने तुम को नहीं देखा और तुम ईश्वर के प्रेम में नमाज़ पढ़ रहे हो और हम को देखते हो और इतना गुस्सा तुम को आता है ! !

तो प्रेम में ध्यान होना स्वाभाविक है। प्रेम के बिना चित्त एक में लगता नहीं। प्रेम के बिना ध्यान होता नहीं। प्रेम के बिना जो संसार का राग है, वह कटता नहीं। जिसके मन में किसी से राग नहीं है, किसी से द्वेष नहीं है—उसके लिए तो कुछ कहना नहीं।

राग रोग है और द्वेष, बड़ा भारी दोष है। जिसके मन में एक से राग होता है, उस के मन में दूसरे से द्वेष होता है और जिसके मन में एक से द्वेष होता है, उसके मन में दूसरे से राग होता है। ये दोनों भाई-भाई मधु-कैटभ हमेशा एक-साथ रहते हैं। और, वैराग्य माने होता है, राग-द्वेष रहित होना। तो हुकुम देने से कि तुम वैरागी बन जाओ, कोई वैरागी नहीं हो सकता। ये जो वैरागी लोग होते हैं वे यह सोचते हैं कि हमारी तरह से दुनिया में सब वैरागी हो जाएँ ! यही उनके वैराग्य की कमी है जो दूसरे को वैराग्यवान् बनाना चाहते हैं। अगर उससे राग न होता तो उसको वैरागी बनाने की तुमको क्या पड़ी थी ? उससे तुम्हारा राग है कि ऐसा बने, ऐसा बने ! तभी तो उसको वैरागी बनाना चाहते हो !

तो यह वैराग्य हुकुम देने से नहीं आता। भूल में मत रहना। या तो बड़ा दृढ़ विवेक होवे, तब यह वैराग्य आता है और या तो भगवान् की कृपा होवे, संत की कृपा होवे तब यह वैराग्य आता है और या तो भगवान् की बड़ी भारी उपासना होवे, तव यह वैराग्य चित्त में आता है।

तो देखो, गोपियों ने किसी से ध्यान की शिक्षा ग्रहण नहीं की थी। उन्होंने सीखा नहीं था कि ध्यान कैसे करना ? आप लोगों ने तो सीखा भी होगा और नहीं तो कम-से-कम शिकायत तो करते ही होंगे कि जब हम ध्यान करने बैठते हैं तो नहीं लगता है। बिना सीखे भी शिकायत करते होंगे।

ध्यान करना होवे तो ज़रा आसन ठीक ढंग का चाहिए। क्योंकि, शरीर और मन का बड़ा घनिष्ठ संबंध है। यदि शरीर में स्थिरता नहीं आवेगी तो मन में भी स्थिरता नहीं आवेगी ! और, शरीर थोड़ा सीधा होना चाहिए और किसी से राग-द्वेष लेकर नहीं बैठना चाहिए। भूखे भी नहीं बैठना चाहिए। अगर भूखा-प्यासा आदमी ध्यान करने बैठ ज़ाएगा तो ध्यान नहीं लगेगा। भूख हो तो थोड़ा हल्का खा लेना चाहिए। प्यास हो तो थोड़ा-सा पानी पी लेना चाहिए। व्रत की बात यह नहीं है कि पुण्य कम हो जाएगा। अगर ध्यान लगाना हो तो अपने को ठीक-ठाक करके बैठना चाहिए। लघुशंका लगी हो तो लघुशंका करके ध्यान करने बैठना चाहिए और लघुशंका लगी हो और ध्यान करने बैठो तो भगवान् का ध्यान नहीं होगा, लघुशंका ध्यान होगा। तो शरीर को निर्मल करके और आसन में थोड़ी स्थिरता लाकर, शरीर सीधा करके, श्वास स्वाभाविक बनाकर और अपने मन को भगवान् के उस रूप में जोड़ना चाहिए, जिससे प्रेम हो।

एक बार मेरे पास दो बंगाली युवक आए। मैंने पहले कभी उनको देखा नहीं था। उम्र उनकी २५-३० बरस की थी। परंतु देखने में मालूम पड़े कि १७-१८ बरस की कोई लड़की हैं। सो मेरे मन में यह प्रश्न हुआ कि ये युवक लड़की सरीखे क्यों लगते हैं ? जब उनसे बात हुई तब मालूम हुआ कि वे अपने को सोलह बरस की लड़की के रूप में ही ध्यान करते हैं। हम १६ बरस की लड़की हैं, गोपी हैं, कृष्ण की प्रेमिका हैं। श्रीकृष्ण हमारे प्रियतम हैं।

तो देखो, ध्यान स्थूल शरीर में परिवर्तन कर देता है। जब श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी से कहा कि तुम किसी दूसरे पुरुष से ब्याह कर लो तो रुक्मिणी ने क्या कहा कि, **'जीवच्छवं भजति कान्तमतिर्विमूढा'** (भागवत, १०.६०.४५) जो विमूढ़ स्त्री है, वह चलते-फिरते मुर्दे को अपना प्यारा मानकर उसके साथ संबंध जोड़ती है। मैं ऐसी नहीं हूँ। मैं समझती हूँ कि किसके साथ प्रेम करना चाहिए और किसके साथ ब्याह करना चाहिए।

जिसने कभी तुम्हारे चरण-कमल की आराधना नहीं की है, जिसने तुम्हारे चरणकमल के मकरन्द की गंध नहीं सूँघा है, वह और किसी से प्रेम करेगा।

तो देखो, भगवान् से प्रेम करके गोपी की स्थिति क्या हुई— इसका उद्धव जी वर्णन कर रहे है। तो जो जिसके चरण की धूलि अपने सिर पर लगाता है, उसके अन्दर वैसे-ही गुण आते हैं। चरण में से शक्ति धरती खींचती है। धरती में एक प्रकार का आकर्षण है और उस पर जो हम पांव रखते हैं, उससे धरती में एक तरह का गुण प्रवेश करता है। जड़भरत का तो कहना है कि महापुरुष के चरण के रज में नहाना चाहिए। **'विना महत्पादरजोऽभिषेकम्' (भागवत्-५.१२.१२३)** महापुरुष के चरणों की धूलि में स्नान किए बिना किसी का हृदय शुद्ध नहीं होता, परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती। अभिमान आ जाता है— हम बड़े यति, हम बड़े जपी, हम बड़े साधक, हम बड़े भगत।

तो नारायण, अगर गोपियों सरीखा प्रेम प्राप्त करना है तो उद्धव जी को गोपियों के चरणों की रेणु प्राप्त करनी होगी!

एक बात प्रसंगवश याद आ गयी— जड़भरत के ही प्रसंग में यह बात कही गयी है कि अगर कोई महापुरुष का अपराध करे तो महापुरुष उस को दंड देगा कि नहीं देगा? बोले कि नहीं देगा। वह तो न्यस्तदंड है। दंड न्यास कर दिया। किसी को किसी अपराध की सजा देना उसके लिए नहीं है। भागवत में कई जगह 'न्यस्तदंड' शब्द का ही प्रयोग है। बोले कि अच्छा, महापुरुष तो किसी को दंड नहीं देगा; लेकिन जो अपराधी है— उसका क्या होगा? बोले कि उसको तो दंड मिलता है। कौन देता है? **'सेर्ष्यं महापूरुषपाद पांसुभिर्निरस्ततेजः सु तदेव शोभनम्। (भागवत, ४.४.१३)** यह जो महापुरुष के चरणों की धूलि होती है, वह धूलि ही उसको तेजोहीन कर देती है। उस अपराधी पुरुष का यश चला जाएगा, कीर्ति चली जाएगी, उसका तिरस्कार होगा, वह लोगों की नज़र में गिर जाएगा। तो महापुरुष तो उसको दंड नहीं देगा। लेकिन जो महापुरुष का अपराध करेगा तो महापुरुष के चरणों की धूलि उसको दंड देती है। तो इसमें रज की ही महिमा है।

एक हौम्योपेथिक डॉक्टर मेरे पास आए। मैंने उनसे पूछा कि हमसे हौम्योपैथिक चिकित्सा वाले कहते हैं कि हमारी दवा लाभ तो करती है, लेकिन नुकसान नहीं करती ! इसको आप युक्ति से समझा सकते हो। तो उन्होंने कहा कि स्वामी जी, यह बात बिल्कुल गलत है। जब औषधि शरीर के भीतर जाती है तो वह किसी-न-किसी प्रक्रिया से फायदा पहुँचाती है। तो जब वह शरीर में जा कर कुछ हेर-फेर करती है, तो वह हेर-फेर कभी किसी के अनुकूल पड़ती है तो कभी किसी के प्रतिकूल भी पड़ती है। इसलिए, जो चीज़ फायदा पहुँचाती है, वह चीज़ नुकसान भी कर सकती है।

तो ये जो पाद पांसु हैं, ये जो श्रद्धा से रज को अपने ऊपर धारण करते हैं, वह उनमें गुण का संचार करती है और जो अपराध की भावना से उसको अपने सिर पर धारण करता है, उसके तेज का हनन करती है। जैसे कोई बदमाशों में रहकर बदमाशी करे तो अपकीर्ति नहीं होगी और सत्संग में रहकर बदमाशी करे तो उसकी ज्यादा अपकीर्ति होगी। उसका तेज, यश, तप और भी क्षीण होगा। क्योंकि, वहाँ तो उसको लोग बुरा मानने वाले हैं।

तो यह जो महापुरुषों के चरणों की धूलि है, यह अपराधियों के लिए दंड भी देने वाली है। और, जो श्रद्धालु हैं, उनको सद्‌गुण भी देने वाली है। तो यदि तुमको भगवान् का ध्यान चाहिए तो उनसे प्रेम करना पड़ेगा। बिना प्रेम के ध्यान नहीं होगा और बिना ध्यान के भगवान् नहीं मिलेंगे और प्रेम, बिना प्रेमी के चरणों की धूलि अपने सिर पर पड़े नहीं मिलेगा। नित्य रसिकों का संग करना चाहिए।

वृन्दावन की माधुरी,
इन रसिकन मिल आस्वादन कियो !

वृन्दावन की माधुरी का आस्वास्दन तो रसिक लोग करते हैं।

तो उद्धव जी कहते हैं कि जब गोपियों के प्रेम की परछाईं हमारे भीतर आवेगी, तब वैसा प्रेम आवेगा ! तब तो उनके चरणों की धूलि चाहिए। चरणों की धूलि कही मिलेगी ? बोले कि वृन्दावन में !

देखो भाई, जैसे पत्थर तो सब है । लेकिन नर्मदा के पत्थर में शंकर की आराधना होती है । और, गण्डकी के पत्थर में शालग्राम की आराधना होती है । हैं तो सब पाषाण ही । परंतु, भगवान् की आराधना के लिए तत्-तत् पाषाण में शिव-बुद्धि, नारायण-बुद्धि शास्त्रविधि के अनुसार की जाती है । अच्छा देखो, यह जो सुनार सोने में शक़ल बना देते हैं— स्त्री, पुरुष, नारायण आदि । तो आकृति तो सब आकृति हैं, लेकिन नारायण की होने से वह पूज्य हो जाती है । अच्छा जी, हर महीने अष्टमी, नौमी आती है और रविवार सोमवार हर महीने में आता है । लेकिन रामनवमी और जन्माष्टमी क्यों पवित्र है ? उपासना के लिए काल में जो पवित्रता का आरोप है, उसको एकदाशी बोलते हैं जन्माष्टमी, राम-नवमी बोलते हैं और वस्तु में जो नारायणपने का आरोप है, उसको शालग्राम बोलते हैं, नर्मदा शंकर बोलते हैं । ऐसे ही जो देश में नारायणपने का भाव है, ब्रह्मपने का भाव है, वह वृन्दावन भूमि है । उतना देश दिव्य देश है । उसको तुम अलीगढ़ मत समझो, दिल्ली मत समझो ! उतनी भूमि के प्रति अपने दिल में श्रद्धा होवे !

गुरु का शरीर मनुष्य नहीं है । वृंदावन की भूमि प्राकृत नहीं है । काशी की भूमि प्राकृत नहीं है । अविमुक्त क्षेत्र है । यह उपासना की महिमा है । तो जैसे मूर्ति दिव्य होती है, काल दिव्य होता है, वैसे देश भी दिव्य होता है । भगवान के धाम को दिव्य देश बोलते हैं ।

तो 'वृन्दावने'— यह दिव्य शक्ति है । अगर तुम एक देश को ब्रह्म नहीं देख सकते तो सब देश को ब्रह्म क्या देखोगे ? एक काल को ब्रह्मरूप नहीं देख सकते तो सर्वकाल को ब्रह्मरूप क्या देखोगे ? कहीं छत फाड़कर ब्रह्म थोड़े ही घुसेगा ? अरे, अपने दिल में उस के लिए जगह तो बनानी पड़ेगी न ! जेवर के एक कण को तो पहचाना नहीं कि सोना है और सिल्ली मिलेगी तो पहचान जाओगे क्या ?

तो उद्धवजी कहते हैं कि इस वृन्दावन में मैं छोटी-छोटी झाड़ी होऊँ लता होऊँ, औषधि होऊँ । झाड़ी निरर्थक होती हैं । उनमें तमोगुण होता है

और लता, भोग देती है माने फूल की सुगन्ध देती है। उसमें रजोगुण है। जौ, गेहूँ आदि औषधि लोगों को भोजन देता है, लोगों का पालन करता है; सो सात्त्विक है। तो एक बार पैदा हुआ और सूख गया। उद्धव जी ने यह नहीं कहा कि हम बड़ हो जाएँ। बोले कि कहीं बड़ हो गए हो पाँच सौ बरस तक कहीं रह गए तो प्रेम कहाँ से मिलेगा। नहीं, भक्त जौ, गेहूँ कुछ बने और गोपियों के चरणों की धूलि उड़कर उस पर पड़े और चार महीने में सूख जाए और फिर गोपियों के प्रेम से ब्रज में कोई प्राणी बने। तो जल्दी से यह जड़ भाव छूट कर चेतन भाव की प्राप्ति होवे, इसके लिए छोटे-छोटे वृक्ष बनना चाहते हैं।

आखिर गोपियों के प्रति उद्धव जी की इतनी श्रद्धा क्यों है? असल में जाति का अभिमान तोड़ने के लिए, आचार का अभिमान तोड़ने के लिए ज्ञान का अभिमान तोड़ने के लिए प्रेम के सामने झुक जाना है।

या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा।

देखो, असली स्वजन कौन है? असली स्वजन 'माने साजन कोई है तो कृष्ण है। और, आर्यपथ कौन है? आर्यपथ भी कृष्ण है। कृष्ण ही आर्य है और वही स्वजनों का स्वजन है। उसकी प्राप्ति के लिए ही लोक भी है और परलोक भी है। तो गोपियों ने बहुत बढ़िया किया कि जिनको छोड़ना संसारी लोगों के लिए बड़ा कठिन! उन स्वजनों को छोड़ा। स्वजनों को छोड़ा तो किया क्या? यह देखो! एक लड़की ने अपने मां-बाप को छोड़ा तो क्या किया? बोले कि किसी के साथ जाकर ब्याह की रजिस्ट्री करा ली। मां-बाप छोड़ा काहे के लिए? बोले कि ब्याह के लिए। और, एक ने मां को छोड़ा, बाप को छोड़ा भगवान् का भजन करने के लिए!! दोनों में कुछ फ़र्क मालूम पड़ता है? एक ने सन्ध्या-वंदन छोड़ा, काहे के लिए? श्रीकृष्ण की प्रीति में मग्न रहने के लिए। और, एक ने काहे के लिए छोड़ा? बोले कि ताश खेलने के लिए। तो दोनों में कुछ फ़र्क है?

देखो, असल में ब्रह्मज्ञान में मायाविशिष्ट ईश्वर से भी वैराग्य करना

पड़ता है, वेदान्त से भी वैराग्य करना पड़ता है, गुरु से भी वैराग्य करना पड़ता है। ब्रह्म पदवी बड़ी ऊँची पदवी है, जिसमें द्वैत उपजीव्य का विरोध करके ब्रह्मज्ञान होता है। यह ब्रह्मज्ञान की महिमा है।

एक घर में तीन पीढ़ी थी— दादा थे, पिता था और स्वयं बेटा था। बेटा अपने बाप की भी सेवा करता था और दादा की भी सेवा करता था। एक दिन कोई राजा आया। उसने लड़के के बाप से कहा कि तुम अपना बेटा हमको दे दो ! हमें उत्तराधिकारी की ज़रूरत है. हम चाहते हैं कि तुम्हारे बेटे को गोद लेकर युवराज बनावें। तो बाप ने सोचा कि ठीक है, हमारा बेटा राजा हो जाएगा। सो तैयार हो गया। अब दादा ने कहा कि यदि तुम बेटे को युवराज बनने के लिए भेज दोगे तो हमारी सेवा कौन करेगा ? सो दोनों में मतभेद हो गया। तो पिता ने अपने पिता का विरोध करके भी अपने पुत्र को राजा होने के लिए भेज दिया। अरे बाबा, यह कैसा पिता है, जो अपने पिता का विरोध करके अपने पुत्र को राजा होने के लिए भेज देता है ! बोले कि यह समझता है कि हमारा बेटा जब राजा हो जाएगा तो अब जितनी सेवा करता है, उससे ज्यादा हमारी सेवा करेगा और हमारे पिता की भी सेवा करेगा।

तो वेदान्त ज्ञान में यह विशेषता है। क्या ! वह श्रवण से तो होता है माने कोई भी महावाक्य जब सुना जाएगा, तो वह श्रोत्रेन्द्रिय से सुना जाएगा। लेकिन वह वाक्य ब्रह्मज्ञान कराकर श्रोत्र को भी बाधित कर देगा और स्वयं भी बाधित हो जाएगा। उपजीव्य का सत्यानाश करके, जिस कान के द्वारा सुन-सुनकर ज्ञान होता है— उस कान को मिथ्यात्व-कोटि में डालना और जिस महावाक्य के श्रवण से ज्ञान होता है, उस महावाक्य को भी मिथ्या कोटि में डाल देना। तो जिससे अपना जीवन मिला, उसका विरोध करके भी ब्रह्म को प्राप्त किया जाता है। यह तो महाराज धर्म का विरोध करें, गुरु का विरोध करें, शास्त्र का विरोध करें, ईश्वर का विरोध करें और प्राप्त क्या करें ? कानी कौड़ी ! नारायण कहो। यह तो बुद्धिमानी की बात नहीं है।

अब देखो, गोपियों की स्थिति क्या है ?

या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च-हित्वा,
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ।

उन्होंने लौकिक स्वजन का त्याग किया, पारलौकिक-आर्यपथ का परित्याग किया और ये लोगों के लिए छोड़ना मुश्किल है । परंतु, इनको छोड़कर उन्होंने प्राप्त किसको किया ? बोले कि मुकुन्द पदवीं— मुकुन्द की पदवी प्राप्त की । 'मुकुन्द-पदवीं' कोई मामूली चीज़ होगी ? मुकुन्द-पदवी कोई मामूली चीज़ नहीं है । श्रुतियाँ जिसको ढूँढने वाली हैं । श्रुति के लिए भी जो अभी मृग्य हैं । माने श्रुतियों ने प्राप्त कर लिया, सो नहीं; प्राप्त कर रही हैं, सो नहीं । अभी श्रुतियों के लिए ढूंढ कर पाने योग्य है । ऐसी मुकुन्द-पदवी गोपियों ने प्राप्त की ।

पहले तो यह विचार करो कि श्रुति, ज्ञान का खज़ाना है । यदि श्रुति में कोई बात नहीं होवे माने वेद में कोई बात नहीं होवे— यह शक्य नहीं । शङ्कराचार्य भगवान् ने इसी बात को लेकर शाण्डिल्य-ऋषि का बड़ा भारी उपहास किया है । वे कहते हैं कि शाण्डिल्य ने कहा कि जो बात वेद में नहीं है, और वैदिकों को जो ज्ञात नहीं हुई— वह पांचरात्र में आयी । तो शंकराचार्य ने वहां यह प्रश्न उठाया कि पंचरात्र में यह बात कहां से आ गयी भाई ? वेद के ऋषियों को जो बात नहीं दिखी, उसको तुम कहाँ से डुबकी लगाकर ले आए ? तो जब यह बात कही जाती है कि वेद को इसका मर्म नहीं मालूम है— वृन्दावन में यह बात तो घर-घर में सुनने को मिल जाएगी । वे लोग ऐसे बोलते हैं कि देखो जी, यह जो गोपी भाव है, यह बड़ा गुप्त है । इसमें नारद जी, शिवजी का प्रवेश नहीं है । ब्रह्मा बेचारे को तो इसका पता ही नहीं है । तब हम उनकी बात पूरी करते हैं कि अच्छा, आप का तो प्रवेश है न ! हम को इस बात पर बड़ा सन्तोष है ।

तो नारायण, प्रत्येक बात को समझना पड़ता है कि आखिर यहां कहा क्या जा रहा है ! तो 'श्रुतिभिर्विमृग्याम्'— का अर्थ यह है कि श्रुति जब

प्रतिपादन करती है तो यह कहती है— 'नेति-नेति'— यह नहीं, यह नहीं। श्रुति जब प्रतिपादन करती है तो कहती है, **'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'**— जहाँ से वाणी लौट आती है। समझो कि सरस्वती देवी परमात्मा को ढूँढने के लिए निकलीं। तो अकेले आने में तो उनको डर लगा। तब कई रूप उन्होंने धारण किया। यह विधि प्रतिपादक है, यह निषेध प्रतिपादक है, यह अन्वय प्रतिपादक है, यह व्यतिरेक प्रतिपादक है। सरस्वती ने अनेक स्वरूप धारण किया। इसलिए, 'यतो वाचो निवर्तन्ते'— 'वाचा' जो बहुवचन है, वह सरस्वती ने तरह-तरह के स्वरूप धारण किए। फिर भी संतोष नहीं हुआ। बोलीं कि कोई-न-कोई पुरुष तो साथ रहना चाहिए। प्रश्न उठा कि पुरुष लेकर जाएँ और परमात्मा नाराज़ हो जाए कि यह औरत होकर परपुरुष के पास दूसरे पुरुष को साथ लेकर आयी है! तो नाराज़ हो जाएँ तो? तब उन्होंने एक नपुंसक दूँढा। कौन? बोले कि 'मनसा सह'— मन को साथ लिया। तो वाणी ने अनेक रूप धारणा किया अनेक शैली— यह अभिधावृत्ति है, यह लक्षणा-वृत्ति है— ऐसे अनेक-अनेक वृत्तियों का रूप धारण किया और फिर मन को साथ लिया। लेकिन बाबा, परमात्मा तो ऐसी जगह कन्दरा में छिपा था कि पहुँच नहीं सकीं 'निवर्तन्ते'— बीच रास्ते से ही लौट आयीं।

तो यह बात किसने कही? यह बात अश्रौत नहीं है। इसमें वेद की निन्दा नहीं हुई। कहो कि वेद की पहुँच परमात्मा तक नहीं है— ऐसा कहने से तो वेद की निन्दा हुई! वेद की निन्दा तो तब होती, जब दूसरा कोई यह बात कहता! जब 'स्वयं वेद ही कह रहा है कि 'यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सा' 'अविज्ञातं विजानताम् विज्ञातं अविजानताम्'— जब वेद ही कह रहा है कि हमारी पहुँच नहीं, श्रुति ही कह रही है कि हमारी पहुँच नहीं— तो उसी की बात को अगर कोई दोहराए तो उसमें वेद की निंदा नहीं हुई। यह तो वेद की स्पष्टवादिता हुई कि जैसे हम घट, पट आदि विषय-वस्तुओं को विषय बनाते हैं, उस ढंग से हम परमात्मा को विषय नहीं बना सकते!

तो 'श्रुतिभिर्विमृग्याम्' का अर्थ है कि इदं, इदं के रूप में घट, पटादि के

समान श्रुति ने भी अभी जिसको प्राप्त नहीं किया है । अब ढूँढ रही है, उसको गोपियों ने प्रेम से प्राप्त कर लिया । उसको गोपियों ने प्रेम से प्राप्त करके अपने हृदय से लगाया, उसकी सेवा की, उस के साथ एक हो गयीं । उस मुकुन्द-पदवी को प्राप्त कर लिया ।

अब देखो, दूसरी बात सुनाते हैं । यह 'श्रुतिभिर्विमृग्याम्' भागवत में और भी है । यह गोपियों को देखकर श्रुतियों को भी आश्चर्य होता है । क्यों ? देखो, हम लोग आधिदैविक रूप से भी श्रुति को मानते हैं । जैसे पंडित लोग जो शब्दोच्चारण करते हैं— यह तो आधि भौतिक रूप है और परावाणी के द्वारा, पश्यन्ति वाणी के द्वारा जो श्रुति का उच्चारण होता है, जो दर्शन होता है— वह आध्यात्मिक है और सरस्वती देवी के रूप में यह जो श्रुति रहती है, देवी के रूप में प्रत्येक श्रुति क ीजो अधिष्ठात्री देवता है, वह श्रुति का आधि दैविक रूप है । तो श्रुति वर्णन करती है । श्रुति को आश्चर्य क्या है, वह सुनो !

श्रुति कहती है कि, '**न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति, आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति ।**' यह बड़ी लम्बी चौड़ी श्रुति है । लोग बेटे के लिए बेटे से प्रेम नहीं करते, अपने लिए बेटे से प्रेम करते हैं । पत्नी के लिए पत्नी से प्रेम नहीं होता, अपने लिए पत्नी से प्रेम होता है । पति के लिए पति से प्रेम नहीं होता, अपने लिए पति से प्रेम होता है । कहने का अभिप्राय यह है कि प्रेम जो होता है, वह अपने सुख के लिए होता है । संसार में जितना प्रेम है, सबकी यही गति है । किसी को देखने में अपने को मजा आता है, किसी को सूँघने मेंअपने को मज़ा आता है, किसी को छूने में अपने को मजा आता है, किसी को चखने में मजा आता है, किसी को पीटने में मजा आता है । मजा आता है तो हमेशा अपने को ! इसलिए संसार में 'न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति, आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति । सब को खुश करने के लिए सबसे प्रेम नहीं होता, अपने को खुश करने के लिए सब से प्रेम होता है । वही प्रेमास्पद जब तकलीफ़ देने लगता है— पति जब तकलीफ़ देने लगता है तो स्त्री आजकल तलाक दे देती है । तो

जब पति को पत्नी से कष्ट मिलता है तो वह पत्नी को छोड़कर दूसरे घर में चला जाता है। सो, लोग अपने सुख के लिए प्रीति करते हैं। तो श्रुति ने कहा कि अपना आत्मा ही सुखस्वरूप है, क्योंकि यही परम प्रेमास्पद है।

अब इधर गोपियों की दशा बिलकुल इससे न्यारी है। वे तो अपने लिए नहीं, श्रीकृष्ण को सुख पहुँचाने के लिए प्रेम करती है। उनका तो सारा जीवन ही कृष्ण को सुख पहुँचाने के लिए है। वे खाती हैं कृष्ण के लिए, पहनती हैं कृष्ण के लिए, सजती-सँवरती हैं कृष्ण के लिए। वृन्दावन में रहती हैं कृष्ण के लिए, पति, पुत्र, सास-ससुर को मानती हैं कृष्ण के लिए! नहीं तो वे किसी को न मानें। वे तो धर्म, देवी, देवता, परलोक आदि को मानती ही इसीलिए हैं कि कृष्ण प्रसन्न हों! तो यह तो बड़े आश्चर्य की बात हुई! श्रुति ने देखा तो आश्चर्यचकित!

तो देखो, ब्रह्मा जी ने कहा था कि हम को तो वृन्दावन में किसी की भी धूलि में नहाने का मौका मिले। ब्रह्माजी ने कहा कि हमको मुक्ति नहीं चाहिए। हमको तो जन्म चाहिए। कहाँ? ब्रह्म लोक में फिर ब्रह्मा बनना चाहते हो? बोले कि न, ब्रज में जन्म चाहिए। 'अच्छा, ब्रज में मथुरा में?' 'नहीं, वृंदावन में।' 'वहां, क्या बनना चाहते हो? कोई गोपी, ग्वाल-बाल? बोले कि न, उनका तो मैं अपराधी हूँ! ग्वालों को चुरा लिया, बछड़ों को चुरा लियां, सो वह बनने का सौभाग्य हमारा कहां है। सबसे बड़ा सौभाग्य वह होगा कि ऐसा कुछ बनूँ कि ब्रज के किसी प्राणी के चरणों की धूलि उड़कर मेरे ऊपर पड़े। ऐसा क्यों चाहते हो? बोले कि, **'यज्जीवितं तु निखिलं भगवान्मुकुन्दस्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव'**— ब्रजवासियों के सम्पूर्ण जीवन के सर्वस्व, ब्रजवासियों के जीवनधन हृदयेश्वर श्रीकृष्ण हैं और 'यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव'— जिनके चरणों की धूलि ढूँढती रहती है, श्रुति। क्या मतलब? श्रुति चाहती है कि हमको गोपियों के चरणों की धूलि मिले। जैसे हम तो कहती हैं कि आत्मा के लिए सब से प्रेम होता है और बात उलटी हो जाए— जैसे गोपियां कहती हैं कि कृष्ण के लिए हमारा सब कुछ; वैसा हमारा भी हो जाए! माने हमारा सब कुछ परमात्मा के लिए हो जाए।

अरे भक्त लोग तो ऐसे कहते हैं कि श्रुतयः पुआल कल्पः— श्रुतियाँ तो पुआल के समान हैं। अब हम इनको क्या ढूँढे ? बात क्या हुई ? श्रुतियों के भीतर जो माल मसाला था, जो चावल था। जो तत्त्व था वह तो गांव की ग्वालिनों ने अपनी आँखों से बुला-बुलाकर अपनी ओर आकृष्ट कर करके अपनी ओर खींच लिया और श्रुतियाँ तो रह गयीं पुआल ! ऐसे भक्त लोग बोलते हैं।

श्रुतयः पलालकल्पा किमिह वयं साम्प्रतं चिनुमः।
आहृतं पुरैव नयनैराभीरीभिः परं ब्रह्म॥

मैं तो गोकुल-कन्याओं को धन्य मानता हूँ जिनकी आँखों में काला अंजन बनकर कृष्ण निवास करता है।

देखो भाई, बात यह है कि तत्-पदार्थ की प्रधानता से तत्त्व का निरुपण और त्वं-पदार्थ की प्रधानता से तत्त्व का निरुपण और ऐक्य पदार्थ की प्रधानता से तत्त्व का निरुपण— यह श्रुति में तीन भाग हैं। तो जब तक परमात्मा दूसरा है, तब तक वह प्रेमास्पद होना चाहिए। जब परमात्मा अपना आपा है, अपना आत्मा है तो अपना आत्मा परम प्रेमास्पद होना चाहिए। अब जब दोनों एक हैं तो दोनों में जो एक है, वह परम प्रेमास्पद होना चाहिए। यह अद्भुत लीला है। तो योग से आत्मरस का आस्वादन होता है, भक्ति से भगवद्-रस का आस्वादन होता है और ज्ञान से ऐक्य-रस का आस्वादन होता है। तीनों विभाग असल में श्रुतियों का ही है। तो परमात्म प्रति पादक श्रुतिं, आत्म प्रतिपादक श्रुति और ऐक्य प्रतिपादक श्रुति— ये जो त्रिधा श्रुति है, वही महावाक्य बन कर, गोपी बनकर और श्रुति बनकर प्रकट होती है।

तो 'मुकुन्द पदवी' माने मुक्तिं ददाति इति मुकुन्दः— जो मुक्ति देवे, सो मुकुन्द। और, 'मुकुन्द' माने मुक्तिं द्यति खण्डयति— जो मुक्ति का अवदान करे, खण्डन करे— वह मुकुन्द और 'मुखे कुंदवत् हास्यो यस्य'— जिसके मुख पर कुंदवत् हास्य है, सो मुकुन्द और 'मुक्ति कुत्सितः यस्मात् स मुकुः प्रेमाः'— मुक्ति, जिससे निन्दित है, उसको कहते हैं मुकु माने प्रेम। तो जो

हमारे हृदय में प्रेम दान करे, उसका नाम 'मुकुन्द'। तो जब भगवान् प्रेमदान करता है तब भगवान् का ध्यान होता है, भगवान की सेवा होती है और जब भगवान् का ध्यान एवं उनकी सेवा होती है, तब मुकुन्द पदवी की प्राप्ति हो जाती है। इसलिए, उद्धवजी कहते हैं कि हमको तो गोपियों के चरणों की धूलि चाहिए। भले कुछ भी होना पड़े, पर हमको तो गोपियों के चरणों की धूलि मिले!

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां।

किसी व्यक्ति को समाधि तो दिख रही हो, लेकिन समाधि का अधिष्ठान जो परमात्मा है, वह न दिख रहा हो तो उसको क्या दिख रहा है? संसार दिख रहा है। वह समाधि भी संसार है जहां समाधि के अधिष्ठानभूत परमात्मा का दर्शन नहीं है। और, कोई देखता है धूलि, रज और उसको उसके साथ दीखता है परमात्मा। तो वह परमात्मा ही दिख रहा है। दृश्य की ऊँची-से-ऊँची स्थिति समाधि है। परंतु, यदि उसमें परमात्मा का दर्शन नहीं है तो वह संसार का दर्शन है और एक आदमी को दीख रही है रज और साथ-साथ उसके अधिष्ठान, आधार परमात्मा दीख रहा है। तो उसकी स्थिति सर्वोच्च है। परमात्मा का दीखना महत्त्वपूर्ण है, कहां दीख रहा है, यह महत्त्व पूर्ण नहीं है।

आप गौर करें प्रेम की उस स्थिति को, जिस में वह भगवान् के चरणारविन्द की रज बनना चाहता है। अच्छा, यदि वह धूलि बन जाएगा तो क्या उसको संगीत सुनने को मिलेगा? क्या उसको बहुत बढ़िया स्पर्श मिलेगा? क्या वह रूप निहारेगा? क्या वह स्वाद लेगा? क्या वह गंध सूँघेगा? अरे, वह तो अपने आपको मटियामेट करके, अपनी सारी इन्द्रियों को मिटाकर और अपने अंतःकरण की सारी वृत्तियों को मिटा कर वह अपने प्रियतम के चरणारविन्द की रज बनना चाहता है। उसके ऊपर तो हज़ार-हज़ार पुरस्त बनने वालों को न्योछावर किया जा सकता है, जो रज बनने में अपने जीवन की सार्थकता समझता है। मुँह से वैराग्य कह देने से वैराग्य नहीं होता। जब तक वस्तु का दर्शन नहीं करोगे तब तक शब्दों की उलझन में फँस जाओगे।

कल्पना करो न कि एक आदमी कहता है कि हमको धन नहीं चाहिए, स्त्री नहीं चाहिए, पुत्र नहीं चाहिए, मकान नहीं चाहिए और एक आदमी यह कहता है कि हम भगवान् के चरणारविन्द की धूलि बन जाएँ। अरे, अभी एक तो लड़ाई कर रहा है कि हमको यह नहीं, यह नहीं, यह नहीं चाहिए! और दूसरा तो अपने साथ पर जाकर बिलकुल बैठ गया। तो जब कोई छोड़ेगा नहीं तो बैठेगा कैसे ?

अब देखो, भगवान के चरण की धूलि बनना और भक्त चरण की धूलि बनना! भगवान् ज़रा संकोची स्वभाव के हैं। जब कोई भक्त का भक्त बनता है, तब वे उसके भक्त बन जाते हैं। दासानुदास बनते हैं। तो उद्धव जी को यद्यपि सख्य-भाव की प्राप्ति है। आप विचार करके देखो कि एक तो वे संबंध में भाई लगते हैं। वसुदेव के भाई देवभाग के पुत्र हैं। भागवत में उनका नाम बृहद्बल बताया हुआ है। परंतु उनका ऐसा गुण था कि जहां जाते थे, वहां सब लोग खुश हो जाते थे।

एक आदमी ऐसा होता है कि वह जहाँ जाए, वहां मनहूसियत फैल जाए। सब लोग उदास हो जाएँ, मुँह लटक जाए। तो कोई आदमी ऐसे होते हैं, जो दुःख लिए-लिए डोलते हैं। पर उद्धवजी ऐसे थे कि आनंद लिए-लिए डोलते थे। क्योंकि परमानंद कंद मुकुंद उनके हृदय में बैठे हुए। जहां जाएँ, वहीं आनंद। तो लोगों ने उनका नाम उद्धव रख दिया। युद्ध करने में भी बड़े निपुण थे। बाणासुर आदि के युद्ध में श्रीकृष्ण के साथ उनका भी वर्णन है तो उद्धव जी श्रीकृष्ण के संबंधी हैं और सखा हैं और सखा में भी चार तरह के सखा होते हैं— एक सुहृद होते हैं; बड़ी उम्र के जो भलाई चाहते हैं। ए देखो, धूप में मत जाना! पेड़ पर मत चढ़ना। पानी में मत घुसना। एक सखा होते हैं, हमजोली माने बराबरी के। एक छोटे होते हैं और एक होते हैं, नर्म-सखा। नर्म-सखा माने जो गुप्त जीवन के रहस्य हैं, शृंगार-रस के जो प्रसंग हैं उनमें भी जिनका प्रवेश है। तो सुहृद, सखा, प्रिय सखा और प्रियनर्म सखा— ये चार प्रकार के सखा होते हैं। तो उद्धव जी श्रीकृष्ण के सखा हैं माने बराबरी के सखा हैं। अब ये जब वृंदावन में आए तो अब

कहते हैं कि हम वृंदावन में ही रहें, मथुरा न जाएँ। तो देखो अब इसमें गोपियों की छाया क्या है ?

बोले कि घर छोड़ दिया और जाति छोड़ दी। माने मथुरा नहीं जाएँगे तो अपने घर तो कभी जाएंगे नहीं और मां, बाप, बन्धु, भाई, पत्नी— सब छूट गए और जाति और संप्रदाय छूट गया। वे कहते हैं कि हम तो वृन्दावन में रहेंगे। कृष्ण को छोड़ देंगे और गोपियों में रहेंगे। यही न इसका मतलब हुआ ! तो कृष्ण के साथ रहेंगे, तब तो सखा हो जाएंगे। सखा तो हैं ही ! और, गोपियों के साथ रहेंगे तो सखी हो जाएँगे। तुम उद्धवजी पुरुष और गोपियां स्त्री ! तो उनके बीच में कैसे रहोगे ? बोले कि बात तो यह पिछड़ेपन की हैं। स्त्री-पुरुष का भेद करना यह कोई उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों की बात नहीं। ऊँचे महात्मा लोग भी ऐसा भेद नहीं करते। उनके लिए तो सब ब्रह्मरूप ही है। ठीक है, पुरानेपन का ख्याल लोगों में भरा हुआ है और ये उच्चकोटि के संत भी नहीं है। 'अच्छा हम गोपियों के बीच में उद्धव होकर नहीं रहेंगे। हम कुछ और होकर रहेंगे !''क्या होकर रहोगे ?' बोले कि कुछ ऐसा होकर रहेंगे कि गोपियों के चरणों की धूलि उड़-उड़कर हमारे ऊपर पड़ती रहे ! तो जड़ जन्म चाहते हैं। बोले कि श्रीकृष्ण के प्रेम में कुछ ऐसा प्रतिबन्धक है जिसके कारण मैं गोपी नहीं हुआ, उद्धव हुआ। तो अब वह रुकावट दूर करके हमको जब गोपी होना है, तो सीधे तो मैं यदुवंशी से गोपी नहीं हो सकता। एक-दो जन्म बीच में पड़ेंगे। तो अगर कहीं बड़, पीपल का जन्म हुआ, देवता का जन्म हुआ, मनुष्य का जन्म हुआ तो सैंकड़ो बरस उसमें बीत जाएँगे और फिर हमको यह सौभाग्य प्राप्त हो कि नहीं हो ! तब फिर बोले कि हम तो जौ, गेहूँ, नागर मोटा— ऐसी कोई घास-पात ब्रज में हो जाएँ कि गोपियों के चरण की धूलि पड़े। एक बार फलें और सूख जाएँ और फिर ब्रज में पैदा हो जाएँ। थोड़े दिनों में तो गोपी बन जाएँगे !

यह देखो, उद्धवजी के मन में गोपियों की छाया !

जब कोई व्यक्ति किसी भक्त के पास जा कर बैठता है और उसका दिल भक्त की ओर उन्मुख होता है कि ज़रा देखें की भक्त के हृदय में क्या है !तो

जब उधर को देखने लगता है, तब अपना हृदय सरोवर शांत हो जाता है और उसमें भक्त के भाव के चंद्रमा की छाया पड़ती है। तो उसके हृदय में भी चांदनी खिल जाती है। अब गोपियों के संपर्क में जब उद्धव जी आए और उद्धव जी का चित्त शांत हुआ, तब उसमें गोपियों के भाव की छाया पड़ने लगी। तो जैसे गोपियाँ अपना कुटुम्ब छोड़ती हैं, अपना गाँव छोड़ती हैं; वैसे ही उद्धव जी भी अपना गाँव, अपनी जाति और संबंध सब छोड़ने को राजी हैं। बोले कि जो मज़ा गोपियों के संपर्क में है, वह तो कृष्ण के संबंध में भी नहीं है। बस-बस अब तो हम यहीं रहेंगे ! !

गोपियों की महिमा क्या है? बोले कि 'भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्'— गोपियों ने अपने व्यक्तिगत जीवन में, तत्त्व की बात नहीं है, तत्त्व मेंतो चींटी ब्रह्म है, सांप भी ब्रह्म ही है, मच्छर भी ब्रह्म ही है। तत्त्व की दृष्टि से सब ब्रह्म और तत्त्व में सब ब्रह्म। लेकिन, इतने से क्या दोष और दुःख दूर हो गए? अरे, जब तक वह उतर कर अपने हृदय में रास नहीं करेगा, जब तक हृदय के चबूतरे पर वृत्ति के साथ गलबहियाँ डालकर वह नृत्य नहीं करेगा, जब तक राधा के साथ विहार नहीं होगा, तब तक क्या व्यक्तिगत जीवन का दुःख जाएगा? व्यक्तिगत देह में, इंद्रिय में, व्यावहारिक जीव का जो व्यवहार में दुःख है, वह व्यावहारिक ब्रह्म से जाएगा। वह अव्यवहार्य ब्रह्म से कैसे जाएगा?

'भेजुर्मुकुन्द पदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्'— श्रुतियां जिस को ढूँढती हैं। ढूँढ लिया हो, सो नहीं। इसी समय पा लिया हो, सो नहीं। आगे मिले, इसके लिए ढूँढ रही हैं। श्रुतियों का उद्योग यही है कि हम परमात्मा को ढूँढे।

बाबा, ईश्वर को चाहते हो ! देखो, उसका पता बताते हैं।

श्रुणु सखि कौतुकमेकं, नन्दनिकेताङ्गणे मयादृष्टं।
गोधूलि धूराङ्गे नृत्यति वेदान्त सिद्धान्तः॥

सहेली हो ! एक आश्चर्य की बात सुनो ! मैं नंदबाबा के आँगन में देखकर आई हूँ। गाय के खुर की धूलि सारे शरीर में लगी हुई है और

नंगधड़ंग कमर में करधनी, हाथ में कंगन, कंठ में बधनहा और मुख पर डिठौना ! और वह बड़ी-बड़ी आँखों वाला कमर पर हाथ रखकर वेदान्त का सिद्धांत ता ता थेई, ता-ता थेई, ता-ता थेई नाच रहा है ।

दोर्भ्यां दोर्भ्यां व्रजन्तं व्रजसदन जनाह्वान प्रेमोल्लसन्तं
मन्दं मन्दं हसन्तं मधुमधुरवचोमेति मेति ब्रुवन्तम् ।
गोपाली पाणिताली तरलितवलयध्वान्मुग्धान्तरालम् ।
वन्दे तं देवमिन्दीवरदलविमलश्यामलं नंदबालम् ।।
परमिममुपदेशमाद्रियध्वं निगमवनेषु नितान्तखेद-खिन्नाः ।
विचिनुतभवनेषु वल्लभीनामुपनिषदर्थमुलूखले निबद्धम् ।।

मेरे इस उपदेश का आदर करो ! सबसे श्रेष्ठ उपदेश है । क्योंकि, आप लोग वेद के जंगल में भटकते-भटकते, ढूँढते-ढूँढते नेति-नेति करते-करते थक गए हो ! चलो-चलो, गोपियों के घर में ढूँढो ! वहां तुम्हारे उपनिषदों का अर्थ ऊखल से बांध कर रखा हुआ है ।

निगमतरोः प्रतिशाखं मिलितं मिलितं न यद्ब्रह्म ।
मिलितं मिलितं इदानीं गोपवधूटी पटाञ्चले बद्धं ।।

मैंने वेदवृक्ष की एक-एक डाली अलग-अलग ढूँढ कर देख ली ! ब्रह्म की प्राप्त नहीं हुई । अब मिला, अब मिला ! कहां मिला ? गोपी ने अपने आँचल के नीचे उसको ढक लिया था, चुरा लिया था— इसलिए नहीं मिला था ।

तो बाबा, अगर श्रीकृष्ण को चाहते हो भगवान् को, ईश्वर को, परमात्मा को; तो उसके लिए चाहिए प्रेम और प्रेम मिलता है, प्रेम के धनी से ! प्रेम के भिखारी से प्रेम नहीं मिलता । धन किससे मिलेगा ? धन मांगने वाले से कि जिसके पास धन इकट्ठा होगा, उससे ? जिसके पास धन इकट्ठा है, उससे धन मिलता है । श्रीकृष्ण प्रेम के भिखारी हैं और गोपियां प्रेम की धनी हैं । प्रेम मिलेगा तो गोपियों से मिलेगा । इसलिए, उद्धवजी ने कहा कि हम तो बाबा गोपियों के चरणारविन्द की धूलि चाहते हैं । केवल धूलि !

कैसी हैं गोपियाँ ? गोपियों का उत्कर्ष बताते हैं । वैसे तो संसार में बहुत हैं, जिन्होंने भगवान् के लिए त्याग किया । क्या महात्माओं ने त्याग नहीं किया ? लोग त्याग कर-करके तो ईश्वर को प्राप्त करते हैं । त्याग करते-करते ही परमात्मा की प्राप्ति होती है । क्योंकि सब कुछ त्याग देने के बाद जो त्याग करने वाले का प्रत्यक् आत्मा है, वही परमात्मा है । इसलिए बिना त्याग किए उस को कोई प्राप्त नहीं कर सकता । तो बिलकुल ठीक बात है ।— त्याग तो सब करते हैं । लेकिन, गोपियों को जैसा रसीला परमात्मा मिला, उसकी ओर तो ध्यान दो !

या वैं श्रियार्चितमजादिभिराप्तकामै—
योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम् ।
कृष्णस्य तद्भगवतश्चरणारविन्दं
न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम् ॥

(१०.४७.६२)

यह भगवद्-प्रेम की बात है । गोपियों ने क्या सौभाग्य प्राप्त किया ? बोले कि स्वयं भगवान् ने उनके वक्षस्थल पर अपना चरणारविन्द रख दिया । है ऐसा सौभाग्य किसी का ? दो तरह की बात है— या तो भगवान् ने देखा कि गोपी के हृदय में मेरे स्पर्श के बिना इतना ताप है कि यदि मैं उसके हृदय पर अपना चरण-कमल रखकर उस को शीतल नहीं करूँगा तो यह भस्म हो जाएगी और या तो दूसरी बात है कि गोपी का हृदय इतना कोमल है, इतना कोमल है कि भगवान् भी ललचा गए कि अगर इसके हृदय पर भी मैंने अपना चरणारविन्दं नहीं रखा तो मेरी भगवत्ता ही सफल नहीं होगी ! क्योंकि, इतना कोमल हृदय तो और कहीं कभी किसी का हमको मिला ही नहीं कि जिसका हम स्पर्श करें । तो स्वयं श्रीकृष्ण भगवान् ने गोपियों के हृदय पर अपने चरणारविन्दं को स्वयं प्रयत्न कर के स्थापित किया ।

अब भगवान् के चरणारविन्द कैसे— सो बताते हैं ।

या वै श्रियार्चितमजादिभिराप्तकामै—
योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम् ।

कृष्णस्य तद्भगवतश्चरणारविन्दं
न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम् ॥

श्रीमद्भागवत एक और तत्त्वज्ञान का ग्रंथ है, तो दूसरी ओर रस का ग्रंथ है । पंचदशी में केवल चित् का विवेक है । उसमें भी अंतिम पाँच प्रकरण पीछे से जोड़े गए हैं । पहले के दस विद्यारण्य स्वामी के हैं और पीछे के पाँच उनके शिष्य के हैं ।

तो अब बताते हैं कि फल में जिन की स्थिति है, वे कृष्ण की आराधना करते हैं । संसार में यह देखने में आता है कि दूसरे की पूजा कौन करता है ? जिसको कुछ साधना हो ! फल की प्राप्ति के लिए लोग पूजा, उपासना भक्ति करते हैं । बोले कि नहीं, भगवान् के चरणारविन्द की उपासना वे लोग करते हैं जो स्वयं फलरूप हैं । पकड़ों इस बात को ! ! **'श्रियार्चितम्'** ! यद् **भगवत् चरणारविन्दं श्रिया अर्चितम् तत्**— भगवान् तो और भी होंगे; लेकिन यहां भगवान् कृष्णस्य तो उन भगवान् कृष्ण के चरणों की पूजा लक्ष्मी ने की है । लक्ष्मी तो फल रूप हैं । लोग चाहते हैं कि हम को लक्ष्मी मिले । सृष्टि में लक्ष्मी का अर्थ होता है, धन-सम्पत्ति ! धन- सम्पत्ति में भोग भी है, ज्ञान भी है । बड़े-बड़े पंडित, विद्वान् सेठों के पास आकर उन को पढ़ाते हैं । ज्ञान दे जाते हैं । लक्ष्मी की कृपा किसी पर होवे तो भोगी लोग उसके पास भोग ले आते हैं और ज्ञानी लोग उस के पास ज्ञान लाते हैं और धर्मात्मा लोग लाकर उसको धर्म देते हैं । लक्ष्मी का कृपापात्र होना अच्छा है ! पर, अभिमान के कारण वे नष्ट होजाते हैं । अभिमान आने से मनुष्य असुर हो जाता है और जब असुर हो जाता है, तब लक्ष्मी भी उसका तिरस्कार कर देती है । पर, देखो, लक्ष्मी का मद दूसरों को हो जाता है, स्वयं लक्ष्मी को लक्ष्मी का मद नहीं होता । एक बात देखो, नारायण भगवान् लक्ष्मी से हमेशा विरत रहते हैं । असंग हैं । आपने बहुत पुराण, शास्त्र सुने हैं; जब लक्ष्मी जी नारायण भगवान् का पांव दबाती रहती हैं, तो नारायण किधर देखते हैं— यह आपको मालूम है कि नहीं ? लक्ष्मी तो दबाती हैं पाँव ! तो स्वाभाविक तो यही लगता है कि नारायण लक्ष्मी की ओर देखते रहे होंगे कि बड़ी कोमल हैं, बड़ी मधुर हैं,

बड़ी सुंदर है ! आओ, इस को देखते रहो ! देख-देखकर नारायण भी तृप्त होते होंगे ! बोले कि न, ऐसा वर्णन कहीं भी शास्त्र में आपको नहीं मिलेगा कि लक्ष्मी तो पाँव दबा रही हैं और नारायण उनको देख रहे हैं ! यही बात तो शास्त्र में पकड़ने की होती है । वे अधखुले नेत्र से, न नींद न जागरण और अपनी स्वरूप समाधि में मग्न रहते हैं । लक्ष्मी कहती हैं कि इनके पास कुछ ऐसा है, जो मुझसे ज्यादा मूल्यावान है । अगर मैं सबसे बड़ी चीज़ होती, सुन्दर होती, मधुर होती, आनन्द होती तो ये प्यासी आँखों से हमको देखा करते न ! तो नहीं, इनके पास कुछ और है ! तो नारायण लक्ष्मी दर्शन नहीं करते ! नारायण आँख में आत्म-दर्शन करते हैं । योगमुद्रा में उन्मग्न निमग्न होते रहते है और लक्ष्मी उनके पाँव की सेवा करती रहती हैं । विरक्त हैं । श्रीमद भागवत में आया कि, लक्ष्मी जी ने शिकायत की कि विष्णु में अगर कोई दुर्गुण है तो यही है और सब तरह के सद्‌गुण हैं । वे ब्रह्मा, रूद्र, इन्द्र, सनकादि, नारद से अच्छे हैं । मैं उन्हें बहुत चाहती हूँ । लेकिन वे मुझसे विरक्त हैं । तो बाबा उनसे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण कुछ वस्तु उनके पास है ।

तो देखो, लक्ष्मीजी स्वयं फलरूप हैं, ब्रह्मा आदि चाहते हैं कि हमारी ओर देखें और वे भगवान् के चरणारविन्द की पूजा करती हैं । सब में जो गतिशक्ति है, यह विष्णु की है । जैसे पूजा होती है तो लोगों के पाँव की पूजा होती है । ब्राह्मण को कहो न कि महाराज, आपका चरण धो लें ! तो बस दोनों पाँव फैला देगा । खुश हो जाते हैं कि आ-हा, हमारे पाँव धुल रहे हैं । हाथ क्यों नहीं फैलाते कि हमारा हाथ धोलो ? तो देखो, हाथ का देवता इन्द्र है । इन्द्र की पूजा कर्म की पूजा होती है और पाँव का देवता विष्णु है, तो पाँव में बैठे हुए विष्णु की पूजा होती है । वह सबको गति देता है माने आगे बढ़ाता है । विष्णु का काम है, आगे बढ़ाना । तो पूजा होती है विष्णु की और पाँव वाला समझ ले कि हमारी पूजा हो रही है तो उसकी बुद्धि की बलिहारी है । पूजा तो विष्णु की होती है; हड्डी, माँस, चाम की नहीं होती है ।

तो विष्णु ने सबका पाँव पुजवा दिया । अब लक्ष्मी जी ने कहा कि भाई, जब सबका पाँव उन्होंने पुजवाया, तो मैं उनके पाँव की सेवा करती हूँ । देखो,

पाँव ही सबका आधार है। सब का भार उठाने वाला यही तो है। आगे बढ़ाने वाला यही तो है। तो सबसे ज्यादा पांव की पूजा अगर किसी को मिली, तो विष्णु को मिली। लक्ष्मी हर समय उनका पाँव अपनी गोद में लेकर दबाती रहती है। अगर तुम्हें मन एकाग्र करना होवे, तब देखो कि लक्ष्मी की गोद में भगवान् के चरणारविन्द हैं और उनमें एक कमल की रेखा है, एक वज्र की रेखा है, एक अंकुश की रेखा है, एक ध्वजा की रेखा है। और, इन रेखाओं में अपने मन को घुमाओ। अरे, तुम्हारे प्राणायाम का परदादा यह निकलेगा। प्राणायाम करने पर मन भाग जाए तो भाग जाए! लेकिन वज्र में, कमल में, ध्वज में उसमें उसको रोकने की शक्ति है। वज्र काहे के लिए है? मन में जो पाप का पहाड़ है, उसको नष्ट करने के लिए है। अंकुश काहे के लिए है? मन के मतवाले हाथी को वश में करने के लिए है। कमल काहे के लिए है? भगवान् के हृदय की कोमलता प्रकट करने के लिए है। जौ काहे के लिए है? वे पोषण करेंगे, इसके लिए है। ध्वजा काहे के लिए है? बोले कि अंत में जीत तुम्हारी होगी! मन से घबड़ाना नहीं। इसके लिए भगवान् के चरणारविन्द के ये सब चिह्न होते हैं और उनका ध्यान किया जाता है। लक्ष्मी जी उनकी अर्चना करती हैं। चंचला होने पर भी ये लक्ष्मी उनका परित्याग नहीं करती हैं। 'श्रियार्चितं'— कर पल्लव रोचिषा संलालितम्। और, अजादिभिः अर्चितं— 'अज' माने ब्रह्मा और 'आदि' माने रूद्र, इद्रं आदि— ये देवता लोग भी अधिकार में स्थित हैं। लक्ष्मी, सम्पद् रूपा हैं और ये देवता आदि ईश्वर रूप हैं। कोई ईश्वर के अवतार हैं, तो कोई अपने धर्म के बल से ऊँचे पद पर पहुँचे हुए हैं। ऐसे समझो कि एक ओर स्त्री पूजा करती है, तो एक ओर बड़े ऊँचे-ऊँचे अधिकारी पूजा करते हैं। और, 'आप्तकामै! योगेश्वरैः अपि'— छोड़ों इन की बात! संसारी लोग सेठों को बड़ा मानते हैं और संसारी लोग मिनिस्टरों को बड़ा मानते हैं! उनके लिए तो सबसे बड़ा साधु वह हैं, जिसके पास मिनिस्टर मिलने के लिए जाए! तो मिनिस्टर, साधु की कसौटी हो गयी। माने मिनिस्टर की बुद्धि बड़ी भारी है, उसने जिस को साधु माना, वह साधु!! तो यह मिनिस्टर के प्रति आदर भाव कहाँ से आया? बोले भाई, तुम ऐश्वर्य को बड़ा मानते हो!

तो नारायण, अगर भगवान् के चरणारविन्द की यही महिमा है कि लक्ष्मी पूजा करती हैं और बड़े-बड़े ब्रह्मा, रूद्रादि अधिकारी पूजा करते हैं, तो फिर शंका तो बनी रही ! तो बोले कि नहीं, भगवान् के चरणारविदं की तो वे लोग पूजा करते हैं, जो आप्त काम हैं माने जिनको कुछ नहीं चाहिए। लक्ष्मी जी तो यह चाहती हैं कि हमेशा मुझे भगवान् के साथ रहने को मिले और ब्रह्मा, रूद्रादि चाहते हैं कि हम अपने अधिकार में रहें और अपने कर्त्तव्य का/ठीक पालन करें। लेकिन महाराज, ये जो महात्मा होते हैं उनको ईश्वर से कोई लेन-देन नहीं है। महात्मा का बही-खाता ईश्वर के पास नहीं है। ईश्वर के रजिस्टर में सब पापी-पुण्यात्मा का नाम रहता है कि पापी को यह दंड देना है और पुण्यात्मा को यह पुरस्कार देना है। पर, महात्माओं का नाम ईश्वर के रजिस्टर में रहता ही नहीं। क्यों ? बोले बाबा कि इनको तो न कुछ लेना है, न कुछ देना है। उनकी करनी-धरनी का भी हिसाब भगवान् नहीं रखते हैं। ऐसा शास्त्र में बिलकुल स्पष्ट है। क्योंकि, महात्मा कुछ करके भगवान् से कुछ लेना नहीं चाहता और भगवान् को जब कुछ देना होगा तो कर्म का हिसाब करके नहीं देंगे। भगवान् तो अपने आपको देने के बाद भी, बिना बहीखाते के अपने आपको महात्मा को अर्पित कर दिया और फिर भी अपने को कर्जदार मानते हैं। अब क्या लिखकर रखा ? इसका इतना कर्ज़ है, यह लिख कर रखा ? कर्ज़ भी इतना है कि भगवान् अपने बहीखाते में लिखना चाहें तो लिख नहीं सकते। यह तो महाराज पैसे वाले पैसे की कीमत आंकते हैं कि हमने इतना दिया, हमने इतना दिया ! भगवान् तो बड़े कृतज्ञ हैं।

तो 'आप्तकामैः योगेश्वरैः'— जो भक्ति योगेश्वर हैं, जिनको संसार में कुछ लेना नहीं-देना नहीं। योग के स्वामी हैं। ये महात्मा लोग चाहें तो जिसको चाहें उसको योग दे दें। देखो, जैसे कुबेर का नाम धनेश्वर है। तो कुबेर किसी पर खुश होवे तो क्या देगा ? धन देगा। योगेश्वर किस को बोलते हैं ? जो योग दे सके, उसको योगेश्वर कहते हैं। हाथ पकड़ कर परमात्मा के साथ जीवात्मा को मिला दे। योग माने संयोग, मिलन, साधन, तो तुरंत साधन का संचार कर दे, वह योगेश्वर है। योगेश्वर जी को क्या

चाहिए ? बोले कि आप्तकाम है । 'कामकामाय मह्यम्' नहीं है । जो संस्कृत नहीं जानते वे इसमें क्या बात कही गयी है सो नहीं जानते । इसमें कहा गया है कि मैं कामों का कामी हूँ, भोग का इच्छुक हूँ और काम के स्वामी हमारी भोग की इच्छा को पूरी करें । अब जाओ कुबेर के पास और हाथ जोड़ो !

तो योगेश्वर कौन है ? जो आप्त-काम है माने काम जिसको मिल गए हों, कोई बाकी नहीं है । ईश्वर मिल गया तो काम बाकी रहा ? काम के बाप को तो अपना लिया और यह नन्हा-मुन्ना बेचारा बच्चा ! यह क्या करेगा ? काम के बाप का नाम है, कृष्ण । जब कृष्ण है हमारा, तो संसार की वस्तुओं की कामना ? तो महात्मा कौन ? बोले कि आप्तकाम ।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥

(गीता, २/७०)

कामकामी को शांति नहीं मिलती । तो महात्मा कौन है ? संसार के सारे भोग, सारी कामनाएँ और सारी वस्तुएँ अपने आप उस के अंदर जाकर उसके आत्म स्वरूप में समा जाती हैं, शांत हो जाती हैं । नदियाँ, समुद्र के पास जाती हैं; समुद्र नदियों के पास नहीं जाता है । इस महात्मा का नाम है, 'आप्तकाम' । लेकिन एक आश्चर्य है कि ये कृष्ण भगवान् के चरणारविन्द को अपने हृदय में स्थापित करके पूजा करते हैं ।

तो ये चरणारविंद, जिन को लक्ष्मी जी सम्भाल कर रखती हैं और ब्रह्मा आदि हाथ जोड़े दूर खड़े रहते हैं, योगेश्वर लोग अपने हृदय में ध्यान करते हैं ! और, इधर कृष्ण ने क्या किया ? गोपियों के प्रेम की वह अवस्था देखकर स्वयं जाकर अपना चरणारविन्द उनके वक्षस्थल पर स्थापित किया और उन्होंने दोनों हाथ से पकड़ कर उनका आलिंगन किया और अपने पाप-संताप को दूर किया । ऐसी गोपियों के चरणों की धूलि में उद्धव जी कहते हैं कि मैं मिल जाना चाहता हूँ !

देखो, जब तक मनुष्य का अभिमान नहीं छूटता, तब तक वह न भक्ति का अधिकारी हो सकता है और न ही ज्ञान का अधिकारी हो सकता है। अभिमान छूटे, तब सेवा हो। अभिमान छूटे,तब आदमी अपने आपको अर्पित करे और अभिमान छूटे, तब गुरु की शरण में जाए और ज्ञान प्राप्त करे। जो लोग भक्ति को और ज्ञान को अभिमान का भूषण बनाकर रखते हैं— देखो, हमारे अंतःकरण के एक कोने में तो भक्ति रहती है और एक कोने में ज्ञान रहता है, एक कोने में योग रहता है और हम देखो तीनों वाले कितने बड़े आदमी हैं ! तो यह जो बड़प्पन है, वह किसी भी योग्यता का सूचक नहीं है। यह तो संसारी लोगों का काम है— हमारे पास इतना धन है, इतना सुख है, हमारे इतना ऐश्वर्य है ! किसी से साधन-चतुष्ट्य का जब वर्णन करते हैं, तब उसमें श्रद्धा नाम की एक वस्तु बताते हैं। तो 'श्रद्धा' माने क्या होता है ? अपने बड़प्पन का अभिमान छोड़कर भक्ति और ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा। और, संसारी बड़प्पन को अपने सिर पर रखोगे तो भगवान् के रास्ते में नहीं चल सकते।

खोर है रस की सांकरिया।
तामे चले न कोई, गरब की ले के गागरिया॥

घमंड का घड़ा सिर पर रखकर और कहो कि हम प्रेम के रास्ते पर चलेंगे ! तो नहीं चल सकते।

यह प्रेम को पंथ करारो महा,
तलवार की धार पे धावनो है।

उद्धव जी जब आए तो यदुवंश के मंत्री, श्रीकृष्ण के सखा, बृहस्पति के शिष्य और तद्-वाक्य प्रमाण पारावार पारीन्— 'तद्' माने व्याकरण शास्त्र और 'वाक्य' माने पूर्व मीमांसा शास्त्र और 'प्रमाण' माने न्यायशास्त्र; तो जो व्याकरण, मीमांसा और न्याय-तीनों में जैसे किसी ने थाह ले लिया हो, उसको बोलते हैं— तद्वाक्य प्रमाण पारावार पारीण। तो उद्धवजी बड़े

भारी पंडित बनकर आए थे। अभिमान लेकर आए थे। नारायण कहो! अब गोपियों का प्रेम देखकर उनका जो अभिमान था, वह छूट गया। छूट गया तो प्रायश्चित भी कर लेना चाहिए। अगर कोई मैल लग गया हो तो धो लेना चाहिए। तो अब अपनी मैल धो लेना चाहिए। कैसे धो रहे हैं? तो गोपियों के चरणों की धूलि में लोट रहे हैं! यह उद्धव जी की स्थिति है।

'ता नमस्यन् इदं जगौ' जब उद्धव जी गोपियों के चरणों की धूलि में लोट-पोट करने वाले हुए तो पहले गान किया। यह जो **'आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां'** है, यह उद्धव जी का संगीत है। संगीत माने स्वस्थ कोई कहे कि गोपियों का विरह देखकर हृदय में करुणा आई होगी और कोई आवेश आया होगा और आवेश में आकर जैसे कोई आदमी कोई काम कर देता है, वैसे आवेश में आ कर उद्धव जी उन ग्वालिनों के चरणों की धूलि में लोटपोट हो रहे होंगे! तो वे आवेश में नहीं लोटे। पहले संगीत किया, गान किया। तो अगर आदमी घबराया हुआ होवे और या फिर आवेश में हो तो उससे कोई गान नहीं होता। देखो, महात्मा लोग जब कोई शाप भी देते हैं तो पहले गा लेते हैं। नारद जी के मन में आया कि नलकूबर, मणिग्रीव को शाप दें। तो **'शापं दास्यन इदं जगौ'**— पहले गाने लग गए। तो अगर दिल में कोई घबराहट होती, कोई क्रोध होता तो गाने का मज़ा थोड़े ही आता। जब गाने का खूब मज़ा आ गया तो बोले कि आओ बेटा, ज़रा सुनो! तुम देखो, शंकरजी के तो भगत हो और कुबेर के बेटे हो और तुम्हारे बाप के पास इतना धन है और तुम्हें इतना ऊँचा अधिकार मिला हुआ है और यह होने पर भी शराब के नशे में नंगी औरतों के साथ नाच रहे हो! तो बेटा यह तुम्हारे स्वरूप के अनुरूप नहीं है। अब थोड़े दिन के लिए पेड़ हो आओ! हाँ, वहां तुम को याद रहेगी कि हमने कुछ गलत काम किया था सो नारद जी ने हमको शाप दिया है। सो तुमको पछतावा होगा और फिर भगवान् की भक्ति मिलेगी! तो देखो, शाप देने से पहले गा लिया। इसका यह अर्थ हुआ कि नारद जी स्वस्थ हैं। कोई क्रोध के आवेश में आकर शाप नहीं दे रहे हैं! इसी प्रकार जब उद्धव जी ने अपने शरीर से गोपियों के चरणों की

धूलि को लगाया तब वे कोई भावावेश में नहीं थे, बिलकुल स्वस्थ थे । बोले कि, बस-बस, हमारे जीवन की सफलता इसी में है—

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ।।

(१०.४७.६३)

यह नंदबाबा के ब्रज की जो स्त्रियाँ हैं— कोई भी हो, कृष्ण की प्रेमिका हो कि न हो, स्त्री-सामान्य के प्रति उद्धवजी के मन में यह भाव है । देखो, जब राजा चलता है तो एक राजा चलता है और उसके साथ सैंकड़ों आदमी चलते हैं । लोग कहते हैं कि देखो, राजा जा रहा है । तो 'राजा' शब्द के अंदर सबका समावेश हो जाता है । तो यदि नंद बाबा के ब्रज में एक गोपी भी श्रीकृष्ण से सच्चा प्रेम करने वाली है और वहां तो हज़ारों हैं; तो चाहे कोई प्रेमिका होए और चाहे न होए, हम तो उसके चरणों की धूलि की वंदना करते हैं । 'पादरेणुः' । श्रीकृष्ण के आगे-आगे धेनु और मुख में वेणु और पांव में रेणु ! तीनों का ध्यान करो ! देखना, मन एक त्रिकोण बनावेगा ! सामने धेनु, मुख में वेणु और पांव में रेणु । त्रिकोण बनने से तुरंत ध्यान लग जाएगा । युगल का ध्यान करना होता है तो षट्कोण । गौरी-शंकर के विराजमान होने से या राधाकृष्ण के विराजमान होने से या सीता राम के विराजमान होने से षट्कोण बनता है ।

तो 'पादरेणुः'— बड़ी भारी शक्ति है । 'वन्दे अभीक्ष्णशः' माने पुनः पुनः, एक बार नहीं । कोई अपने को कहता तो फिरे ज्ञानी और किसी को प्रणाम करना पड़े तो तन जाए ! तो ब्रह्म ने सिर ताना कि अभिमान ने उसका सिर तान दिया । ब्रह्मज्ञान शरीर को मोम बना देता है, यह शरीर को पत्थर नहीं बनाता, लोहा नहीं बनाता । क्योंकि, जैसे सांप की केंचुल अलग रह जाए, ऐसे ब्रह्मज्ञानी शरीर को अलग छोड़ देता है । अरे, शरीर ऊपर बैठे कि नीचे बैठे कि लोग तारीफ़ करें कि गाली दें ! वह तो सब अपने-अपने कर्म का फल लेते हैं और ब्रह्मज्ञानी तो ज्यो-का-त्यों अपनी जगह पर है ।

तो अब देखो उद्धवजी क्या करते हैं कि ये गांव की गँवार ग्वालिन, लेकिन श्रीकृष्ण के प्रेमरस में डूबी हुईं, उनके चरणों की धूलि की बारंबार वन्दना करते हैं। बोले कि चरणों को छूने की तो हमको हिम्मत नहीं है, अधिकार नहीं है। अच्छा उद्धव जी, तुम इन ग्वालिनों का आदर करते हो? बोले कि नहीं, हम तो प्रेम का आदर करते हैं! प्रेम भी क्या संसारी प्रेम का आदर करते हैं। नहीं कृष्ण प्रेम का आदर करते हैं। यह संसारी प्रेम का आदर थोड़े ही है! यह तो कृष्ण-प्रेम का आदर है। ऐसी कौन-सी बढ़िया बात गोपियों के जीवन में है, जो तुम्हारे ऊपर असर कर गयी है? बोले कि, **'यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्'**—।

देखो, लोगों के मन में एक ऐसा अभिनिवेश होता है कि जो ज्यादा संस्था बनाता है, जो ज्यादा व्याख्यान देता है, जो ज्यादा घूमता है, पादरी लोग जैसे संघटित होकर काम करते हैं, वैसे ही हिन्दू साधु भी करे तो बहुत बड़ा है! तो हिन्दुस्तानी-साधु का ढंग है, आत्मानुभूति और पाश्चात्य-साधु का ढंग है, परोपकार! तो जो लोग पाश्चात्य शिक्षा से शिक्षित हैं, पाश्चात्य-संस्कृति का जिनके ऊपर ज्यादा प्रभाव है, वे यही देखते हैं कि इन्होंने कितने अस्पताल खोले! भई, उनकी संस्था की कितनी ब्रॉंच हैं!

तो भाई, जो प्रेमी होता है वह अपने में डूबा रहता है, जो योगी होता है वह अपने में डूबा रहता है, जो ज्ञानी होता है वह अपने में डूबा रहता है। तो आत्मनिष्ठ हो गया न!

बोले भाई कि यह गोपियों ने ऐसा कौन-सा परोपकार कर दिया कि तुम्हारे सरीखा विद्वान् उनके चरणों में लोटे! हाँ, उन्होंने अस्पताल तो नहीं खोले और संस्था नहीं बनाई और लाउडस्पीकर नहीं बजाया और लोगों को निमन्त्रण देकर बुलाकर व्याख्यान नहीं दिया! तब फिर उनकी महिमा क्या है? बोले कि एक मिशनरी जितना काम करता है, उससे ज्यादा काम उनसे हो गया। कैसे हो गया? आप देखो— **'यासां हरिकथोद्-गीतं पुनाति भुवनत्रयम्'**। एक साधु का ज्यादा असर कहाँ? बोले कि एक प्रांत में, एक ज़िले में, एक देश में! बोले कि नहीं, विवेकानंद का प्रभाव तो सारे विश्व में

है । ठीक है, गोपियों ने दुनिया का क्या उपकार किया ? बोले कि 'पुनाति भुवनत्रयम्'— तीनों लोक पवित्र कर दिया गोपियों ने ! हे भगवान् ! गोपियों में ऐसा क्या प्रभाव है कि तीनों लोक पवित्र होवे ? तो बताते हैं, 'यासां हरिकथोद् गीतं' आजकल जिन लोगों का बड़े महत्त्वपूर्ण ढंग से बड़े प्रेम से नाम लिया जाता है, पांच हज़ार बरस बाद उनके नाम की क्या दशा रहेगी, अभी हम बता नहीं सकते हैं । आप क्या समझते हैं ? यह जो छोटे-मोटे नेता निकलते हैं और जो छोटे-मोटे नामवर लोग निकलते हैं, तो चलते-चलते उनके बारे में केवल इतिहास में पढ़ाया जाता है । और देखो, गोपियों का जो माहात्म्य है, वह पाँच हज़ार वर्ष पहले जितना माना जाता था, चार हज़ार बरस पहले उससे उससे बहुत ज्यादा था, तीन हज़ार बरस पहले उससे भी अधिक था, दो हज़ार बरस पहले उससे भी बढ़ गया । जितने कवि हुए हैं भारतवर्ष का कोई कवि होवे– क्या तमिल होवे और क्या काश्मीर की डोंगरी भाषा का कवि होवे, जिसने कि कृष्ण का गुणगान नहीं किया और जिसने गोपियों का गुणगान नहीं किया ! वह कवि क्या ?

देखो, गोस्वामी तुलसी दास जी राम के कवि हैं । लेकिन उन्होंने कृष्ण गीतावली लिखी है । बड़ी सुन्दर रचना है । अरे बाबा, बिना कृष्ण-कथा के कवित्त पूरा नहीं होता और बिना गोपियों की कथा के कृष्ण-कथा पूरी नहीं होती । तो, 'यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयं' ।

लोगों के लिए मंत्र बताया कि देखो, तुम कृष्ण को पाना चाहते हो, कृष्ण का भजन करना चाहते हो तो 'गोपीजन वल्लभ' मंत्र का जप करो ! इस मंत्र का जप माने गोपी की भावना दुहरा-दुहरा कर, गोपी की बात दुहरा-दुहराकर, गोपी कैसे-कैसे कृष्ण की सेवा करती थी— इसको दुहरा-दुहरा कर श्रीकृष्ण प्रेम की शिक्षा प्राप्त करो ।

उद्गायतीनामरविन्दलोचनं व्रजाङ्गनानां दिवमस्पृशद्ध्वनिः ।
दध्नश्च निर्मन्थनशब्द मिश्रितो निरस्यते येन दिशाममङ्गलम् ॥

(भाग० १०.४६.४६)

गोपी जब दही मथ रही है तो उसकी मथानी स्वर में स्वर मिलाकर नाच रही है, उसके कंगन किं किं कर रहे हैं, झांझ बजा रहे हैं और गोपी गा रही है— कृष्ण - - -कृष्ण - - - कृष्ण । यह महाराज प्रेम की ध्वजा है । किसी से प्रेम करो— राम से करो, कृष्ण से करो, शिव से करो, नारायण से करो ! लेकिन प्रेम अगर सीखना हो तो गोपी से सीखो ! प्रेम की गुरु गोपियाँ हैं । तो 'यासां हरिकथोद् गीतं' ।

वेद में उद्गीथ का गान होता और यह गोपियों के द्वारा उपगीत है और हरिकथावत् उपगीतं— जैसे कृष्ण कथा का माहात्म्य है, वैसे ही गोपी-कथा का माहात्म्य है ।

तव कथामृतं तप्त जीवनं, कविभिरिडीतं कल्मशापहम् ।

अपने जीवन को यदि धन्य-धन्य करना चाहते हो तो 'हरि कथा कथा, और सब वृथा व्यथा । भगवान् की कथा, कथा है । ज़रा सोचो तो कि २४ घंटे में जब घंटे- दो घंटे घर में बैठकर तुमको बातचीत करने का मौका मिलता है । कभी ध्यान देकर देखना और नहीं देखोगे तो ज़िन्दगी खराब हो जाएगी ! हम बात सीधी-सीधी कहते हैं ! अगर इसी कथा में लगे रहोगे कि उनकी बहू ऐसी, उनकी बेटी ऐसी और वह व्यक्ति ऐसा और यह ऐसा ! तो तुम्हारे दिल का मटियामेट हो जाएगा । तुम्हारा दिल संसारी हो जाएगा ! तुम ईश्वर के रास्ते में नहीं बढ़ सकोगे । जब तुम यह चर्चा अपने घर में निकालोगे कि कृष्ण ऐसे और ग्वाले ऐसे और गोपियां ऐसी और वृन्दावन ऐसा और यमुना जी ऐसी और रास-लीला ऐसी ! तब तुम्हारा मन भगवान् में लगेगा और तुम्हारा कल्याण होगा । और, नहीं तो महाराज, उनका दोष और उनका गुण; उनसे राग और उनसे द्वेष ! फंस जाओगे संसार में ! ! यदि ज़रा भी मन में होवे कि हम संसार से निकले तो अपनी चर्चा का विषय बदलना पड़ेगा । मनुष्य का मन तो तब साफ़ जाहिर होता है, जब दो आदमी अकेले में बैठते हैं और आपस में बात करते हैं ! क्या बात करते हैं बैठ

कर ? लोगों के सामने बैठेंगे तब भगवान् का भजन और जब आपस में बैठेंगे तो राग-द्वेष की चर्चा ! तुम ईश्वर के रास्ते पर चलना चाहते हो कि संसार में फँसकर मरना चाहते हो । यह मृत्यु का मार्ग है । प्रमादं मृत्युआहुः — अपने जीवन में जो प्रमाद हो रहा है, यही मृत्यु है ।

तो ये गोपियाँ जब बैठती थीं तब आपस में कृष्ण की चर्चा करती थीं । तो गोपियों ने जो कृष्ण-कथा की, वह कथा करो । गोपियों की कथा कृष्णकी कथा के समान है और जो उनको सुनता है और पढ़ता है और जो आपस में उनकी चर्चा चलाता है, जो उनके बारे में सोचता है— वह तीनों लोक को पवित्र कर देता है ।

आप जानते हैं न कि ये जो शब्द हम बोल रहे हैं,— तो यह मत समझना कि जब ब्राडकॉस्ट करने वाली मशीन लगायी जाएगी तब हमारी आवाज़ अमेरिका में पहुँचेगी । या कि ब्राडकॉस्ट की मशीन लगायी जाएगी और वहां रेडियो रहेगा तब वे लोग सुन सकेंगे ! लेकिन यहां अगर पकड़ने वाली मशीन नहीं है और वहां खींचने वाली नहीं है तो यह मत समझना कि हमारी आवाज़ वहां नहीं पहुँचती । तब भी हमारी आवाज़ वहां पहुँचती है । वहाँ पकड़ने की मशीन उनके पास नहीं है कि पकड़ सकें और यहाँ से पकड़ कर फेंकने वाली मशीन यहां नहीं है, इस लिए मालूम नहीं पड़ता । लेकिन हम जो मुँह से शब्द बोलते हैं, वह सारी सृष्टि में फैल जाता है । तुम गाली देते हो तो समझते हो कि हमने चुपचाप गाली दे ली ! एक आदमी ने सुना तो क्या हुआ ? वह गाली सारी सृष्टि में फैलती है और संसार गालीमय बनता है । और, जब तुम कृष्ण, कृष्ण बोलते हो तो तुम्हारी आवाज़ सारी दुनिया में फैलती है । तो अकेले में रहो, दुकेले में रहो और सभा के बीच में रहो, जो तुम कल्याणी वाणी बोलोगे— वह तुम्हारी कल्याणी वाणी सम्पूर्ण विश्व का कल्याण करेगी ।

अतः गोपियों ने जो कृष्ण-चरित्र का गान किया, वह उस समय भी तीनों

लोकों को पवित्र कर रहा था। लोगों को विषय चिंतन से छुड़ा कर कृष्ण-चिंतन में लगाता था। और, आज भी वे शब्द, वह ध्वनि विश्व-सृष्टि में व्याप्त है ! आज भी वह विश्व का कल्याण कर रही है। उद्धवजी कहते हैं, 'उन गोपियों के चरणों की मैं बारम्बार वंदना करता हूँ ! !

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज द्वारा विरचित एवं सम्प्रति उपलब्ध साहित्य

वेदान्त

मुण्डक सुधा	110.00
माण्डूक्य प्रवचन (आगम प्र.) भाग-1	150.00
माण्डूक्य प्रवचन (वैतथ्य प्र.) भाग-2	80.00
माण्डूक्य प्रवचन (अद्वैत प्र.) भाग-3	150.00
माण्डूक्य प्रवचन (अलात शान्ति) भाग-4	100.00
ईशावास्य प्रवचन	20.00
ईशानुभूति (ईशावास्योपनिषद् के आधार पर)	40.00
केनोपनिषद्	70.00
कठोपनिषद् (दो भागोंमें)	250.00
बृहदारण्यकोपनिषद्	60.00
श्वेताश्वरोपनिषद्	150.00
कैवल्योपनिषद्	10.00
छान्दोग्य-बृहदारण्यक एक दृष्टिमें	10.00
ब्रह्मसूत्र प्रवचन-भाग 1	60.00
ब्रह्मसूत्र प्रवचन-भाग 2	60.00
ब्रह्मसूत्र प्रवचन-भाग 3	60.00
दृग दृश्य विवेक	80.00
विवेक कीजिये (विवेक चूड़ामणि प्रवचन)	100.00
अपरोक्षानुभूति प्रवचन	80.00
वेदान्त बोध	60.00
साधना और ब्रह्मानुभूति	70.00
महाराजश्रीकी डायरीसे	6.00
आनन्द सूत्र	15.00
आनन्दानुभव	20.00

जीवन्मुक्ति विवेक	75.00
अष्टाव्रक्रगीता	25.00
अष्टावक्रगीता प्रवचन	80.00
मिथ्यात्व ज्ञान	10.00
ध्यान और ज्ञान	50.00

श्रीमद्भगवद्गीता

गीता-रस-रत्नाकर (सम्पूर्ण गीता)	130.00
सांख्ययोग (गीता अध्याय-2)	150.00
कर्मयोग (गीता अध्याय-3)	60.00
ध्यानयोग (गीता अध्याय-6)	100.00
ज्ञान-विज्ञान-योग (गीता अध्याय-7)	130.00
अक्षर ब्रह्मयोग (गीता अध्याय-8)	50.00
राजविद्या राजगुह्ययोग(गीता अध्याय-9)	35.00
विभूतियोग (गीता अध्याय-10)	150.00
भक्ति योग (गीता अध्याय-12)	50.00
ब्रह्मज्ञान और उसकी साधना (गीता अध्याय-13)	120.00
पुरुषोत्तमयोग (गीता अध्याय-15)	45.00
दैवी-सम्पदयोग (गीता अध्याय-16)	50.00
दैनिक जीवनमें गीता	60.00
योगः कर्मसु कौशलम्	6.00
मामेकं शरणं ब्रज	20.00
गीतामें भक्तिज्ञान समन्वय	30.00
गीतामें मानवधर्म	25.00
वासुदेवः सर्वम्	10.00
मया ततमिदं सर्वं	15.00
गीता दर्शन - भाग 1, 2, 3	600.00

श्रीमद्भागवत

भागवत दर्शन (दो भागोंमें)	450.00
भागवत - दशम स्कन्ध	150.00
मुक्ति स्कन्ध (भागवत-एकादश स्कन्ध)	200.00
रास पंचाध्यायी	80.00
श्रीकृष्णलीला रहस्य	45.00
भागवतामृत	70.00
भागवत व्यंजन	50.00
भागवत सर्वस्व	25.00
गोपीगीत	60.00
वेणुगीत	40.00
युगलगीत	50.00
गोपियोंके पाँच प्रेमगीत	15.00
उद्धवगीत	25.00
कपिलोपदेश	60.00
हंसगीता (हंसोपाख्यान)	15.00
सद्गुरुसे क्या सीखें?	15.00
उनकी कृपा	20.00
ऊखल बन्धन लीला	50.00
सत्संग महिमा	15.00
प्रह्लाद चरित	60.00
उद्धव व्रजगमन	180.00
भागवत विमर्श-भाग 1	20.00
भागवत विमर्श-भाग 2	25.00
मानव जीवन और भागवत धर्म	100.00
गर्भ स्तुति	40.00
प्रणयगीत	60.00

वसुदेव देवकी स्तुति	20.00
ईशानुकथा (नवम स्कन्ध)	30.00
भागवत विचार दोहन	30.00
भिक्षुगीत	15.00
रामायण	
श्रीरामचरितमानस (तीनों भागोंमें)	600.00
अध्यात्म रामायण	125.00
श्रीमद्वाल्मीकि रामायणामृत	60.00
मानस दर्शन	30.00
सुन्दरकाण्ड (वाल्मीकि रामायणान्तर्गत)	30.00
भक्ति एवं साधना	
भक्ति एवं लीला	10.00
प्रेरक प्रसंग	20.00
नाम महिमा	15.00
नारद भक्ति दर्शन	75.00
भक्ति सर्वस्व	75.00
भक्तिदर्शनामृत	50.00
भक्तिका चमत्कार	20.00
अवतार रहस्य	20.00
माधुर्य कादम्बिनी	30.00
शिव संकल्प सूक्त	25.00
कृष्ण-कृष्णके उच्चारणसे कृष्ण प्राप्ति	10.00
मोहनकी मोहनी	15.00
ध्यानके समय	
हनुमत्स्तोत्र	
श्रीअखण्डानन्द स्तवः	6.00
सत्संग सुधा	20.00

प्रार्थना षट्पदी	25.00
साधन विचार	20.00
ब्रह्ममूर्ति श्रीउड़िया बाबा	30.00
भगवान्के पाँच अवतार	50.00
विष्णु सहस्रनाम	30.00
भक्त-चरित	15.00
महाराजश्री एक परिचय	25.00
सबके प्रिय सबके हितकारी	10.00
श्रीपूर्णानन्द तीर्थ स्तवः (चित्रावली)	100.00
श्रीगुरुदेव प्रातः स्मरणम्	5.00
भिक्षु स्वामी शंकरानन्द	20.00

विविध

पावन प्रसंग	80.00
आनन्दवाणी	80.00
आनन्द उल्लास	60.00
आनन्द बिन्दु	50.00
आनन्दवचनामृत	10.00
आनन्द वार्ता	10.00
आनन्द पत्रावली	50.00
आनन्द रस रत्नाकर	150.00
आनन्द-ही-आनन्द	20.00
व्यवहारशुद्धि	50.00
हृदयाकाशके हीरे	50.00
आप सबसे श्रेष्ठ हैं	20.00
गृहस्थाश्रम धन्य है	30.00
जीवन-एक यात्रा	20.00
व्यवहार और परमार्थ	25.00

ईश्वर दर्शन	20.00
आनन्द प्रश्नोत्तरी	30.00
आपका व्यवहार	20.00
अमृत महोत्सव	20.00
आपकी पसन्द	25.00
भारतीय संस्कृति	10.00
सत्यकी खोजमें	25.00
जिज्ञासा और समाधान	30.00
स्पन्द तत्त्व	15.00
प्रकाश स्तम्भ	60.00
(दैनिक कैलेण्डर : महाराजश्रीके चित्र एवं उपदेश)	
अमृत बिन्दु कैलेण्डर	35.00
आनन्द मंजूषा	60.00
गुरु पूर्णिमा	10.00
सुखी रहो और सुखी रखो	10.00
आनन्द रत्न	50.00
सद्‌गुरु प्रसाद	40.00
जीवनमें साधना	25.00
आनन्द निर्झर	35.00
चारु चिन्तन	60.00

- प्रधान कार्यालय : **सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट,**
  विपुल 28/16 बी. जी. खेरमार्ग, मालाबार हिल,
  मुम्बई-400006, फोन : (022) 23682055, मो. : 09619858361
- शाखा कार्यालय : **सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट**
  श्रीअखण्डानन्द पुस्तकालय, आनन्द कुटीर,
  मोतीझील, वृन्दावन-281124
  फोन : (0565) 2913043, 2540487, मो. : 09837219460

अखण्डानन्द सरस्वती

उद्धव-गीत

इसी पुस्तक से.....

* प्रेमकी बड़ी विचित्र-विचित्र दशा होती है।
* प्रेम कभी क्षीण नहीं होता।
* प्रेममें, हृदयमें कठोरता नहीं आती।
* प्रेममें, एक बांकापन होने पर भी पूर्णता रहती है।
* प्रेममें निर्भयता होती है।
* प्रेम बुरी-से-बुरी अवस्थामें भी साथ नहीं छोड़ता।
* और, प्रेम में नये-नये रस की उत्पत्ति होती है।
* नया नया सुख, नया-नया स्वाद, नया-नया भाव क्षण-क्षण पर आता है....

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति

सत्साहित्यप्रकाशनट्रस्ट

आनन्द कानन प्रेस
हेवीनीम, वाराणसी • फोन : 2392337